श्रीमती सौ० तारादेवी जैन पाटोदी तथा श्री. रतनलाल जैन पाटोदी लोहारदा (इन्दौ

श्रीमती सौभाग्यवती तारादेवी पाटोंदी

★

धर्मपत्नी, श्रीमान् रतनलाल जी जैन पाटोंदी

लोहारदा (इन्दौर)

म० प्र० द्वारा

श्री त्रिलोकतीजव्रत के उपलक्ष्य में

जैन महिलादर्श के

ग्राहकों को

सादर

भेंट

★

विनीत

बछराज मोतीलाल पाटोंदी

लोहारदा (इन्दौर)

(म० प्र०)

श्री सोमसेनाचार्य-विरचित

भक्तामर-महामण्डल-पूजा

श्री पं० कमलकुमार जी शास्त्री कृत हिन्दी पद्यानुवाद,
भाषाटीका, अंग्रेजी अनुवाद, ऋद्धि, मन्त्र, विधि,
फल तथा श्री मानतुङ्ग कृत भक्तामर सहित

सम्पादक

मोहनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ,
जवाहरगंज, जबलपुर

प्रकाशक

सरल जैन ग्रन्थ भण्डार
जवाहरगंज, जबलपुर

श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४९५
चतुर्थ संस्करण
मूल्य—सवा रुपया

पद्यानुवाद-कारक की प्रार्थना

मानतुङ्ग की बेडियाँ, टूट गई थी सर्व ।
भक्तामर के रचे से, हो करके निर्गर्व ।। १ ।।

इन समान स्तोत्र को, पढे-सुने तिरकाल ।
ऋद्धि-सिद्धि वसु नव सुनिधि, पावत वह तत्काल ।। २ ।।

यदि सच्चा श्रद्धान हो, नही भ्रमावे योग ।
कार्य सफल होगे सभी, निर्विकार उपयोग ।। ३ ।।

हिन्दी भाषा मे कियो, देख मूल का अर्थ ।
पढ़ना सोच-विचार कर, नही समझना व्यर्थ ।। ४ ।।

स्वर व्यञ्जन मात्रादि की, मुझ से जो हो भूल ।
सुधी सुधार पढो सदा, तो पावो भव-कूल ।। ५ ।।

बिरले समझें संस्कृत, भाषा समझें सर्व ।
इसी हेतु मैने लिखा, भाषा में निर्गर्व ।। ६ ।।

मुझको चाह न और कछु, प्रभु की चाहूँ भक्ति ।
जब तक यह संसार है, बनी रहे अनुरक्ति ।। ७ ।।

यदि प्रभु इसके विषय मे, देना चाहे आप ।
तो मेरे जन्मान्तरों के कट जावे पाप ।। ८ ।।

वह दिन कब आवे प्रभो, छूट जाय संसार ।
देना उसे मिला विभो, नमता सौ सौ बार ।। ९ ।।

चल न सके अब लेखिनी, आगे को पद एक ।
प्रभु के गुण के लेख को, चाहे अधिक विवेक ।। १० ।।

मत घबड़ा री लेखिनो, अब ले ले विश्राम ।
होगे इच्छित सिद्ध सब, जपने से प्रभुनाम ।। ११ ।।

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मंडल

पूजा के माड़ने का आकार

ॐ ह्रीं क्लीं
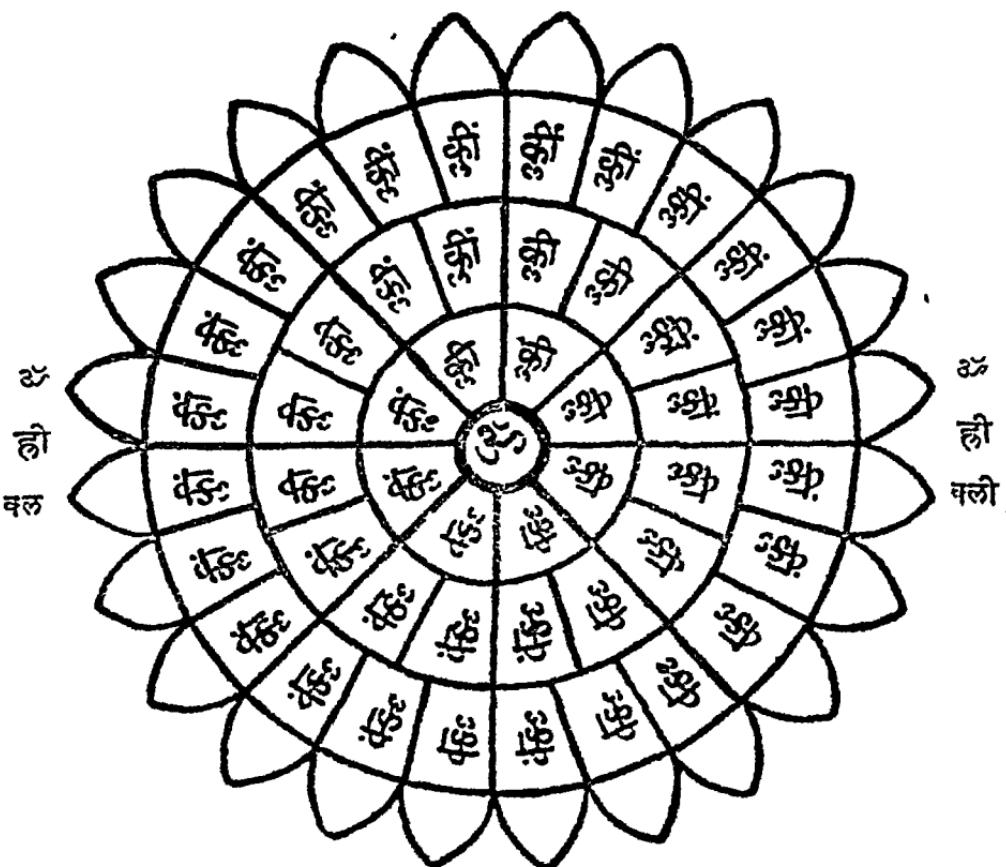
ॐ ह्रीं क्लीं

सर्व सिद्धिदायक मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं श्री अर्हं श्री वृषभनाथतीर्थङ्कराय नमः

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उक्त मन्त्र को लवङ्गों ने १०८ बार जपना चाहिये ।

आ वे द न

अखिल जैन समाज में भक्ति-मार्ग को प्रदर्शित करने वाले प्रायः सभी संस्कृत स्तोत्रो में 'आदिनाथ स्तोत्र' ने अधिक आदर, श्रद्धा-तथा ख्याति प्राप्त की है। यह स्तोत्र विविध अलङ्कारो से भूपित और सारगर्भित सूक्तियों से सुसज्जित एवं सुमधुर पदो से विभूपित है।

इस स्तोत्र के शब्द-शब्द से भक्तिरस की अविरल धारा प्रवाहित होती है। समूचे स्तोत्र मे एक से एक वढकर काव्य रचनाये है, जो कि पढने वाले का मन बरबस मोह लेती है। वाचकवृन्द भक्तिरस मे तन्मय होकर धर्म का एक अपूर्व लाभ अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में यह ऐसा अनुपम स्तोत्र है जो वीतराग शुद्धात्म-स्वरूप की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने में समर्थ है। समाज मे यह सौम्य-सुन्दर आदिनाथ स्तोत्र 'भक्तामर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, इसका कारण है इसका 'भक्तामर' शब्द से प्रारम्भ होना।

इस स्तोत्र की लोक-प्रियता का वर्णन करना सम्भव नही है, क्योकि समाज के प्राय सभी स्त्री-पुरुप तथा वच्चे तक इसको कठाग्र रखते है और अधिकाश तो इसका पाठ किये बिना या श्रवण किये विना भोजन तक नहीं करते।

सर्व साधारण के हितार्थ प्रस्तुत पुस्तक में आजकल की खडी बोली की कविता मे वोधगम्य श्री० पं० कमलकुमार जी शास्त्री-कृत सरल पद्यानुवाद तथा लोकप्रिय भाषा में अर्थ दे दिया गया है। जिससे इसकी उपयोगिता अधिक वढ गई है। प्रत्येक मूल श्लोक के ऊपर शीर्षक में श्लोक का विपय सूचित कर दिया जाने से भी एक वडी कठिनाई का हल हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक मे पहले मूल भक्तामर का सस्कृत श्लोक, उसके नीचे सस्कृत पद्य मे अर्घ्य, पश्चात् पद्य में हिन्दी अनुवाद बाद मे ऋद्धि मंत्र-विधि तथा उसका फल, फिर भाषा में सरल अर्थ दिया गया है।

प्रा क्क थ न

आदिनाथ स्तोत्र जिसका दूसरा नाम भक्तामर भी है जैन समाज में सबसे अधिक प्रचलित भक्तिरस का अपूर्व महाकाव्य है। इसका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना है। अखिल जैन-समाज मे विरला ही कोई ऐसा होगा जो इस स्तोत्र के नाम से परिचित न हो। धर्म पर प्रगाढ श्रद्धा रखने वाले वहुत से, ऐसे भी जैन है जो तत्त्वार्थसूत्र या भक्तामर का पाठ या श्रवण किये बिना अन्न तक ग्रहण नही करते।

हिन्दुओ मे गणेशस्तोत्र का जो स्थान है, जैनियो मे वही स्थान भक्ता-मर को प्राप्त है। वहुत-सी लौकिक पुस्तको के पढ चुकने के वाद भी जैन वालक जव तक उपर्युक्त दोनो महान् धार्मिक पुस्तको को नहीं पढ लेता है तव तक वह समाज की दृष्टि में वेपढ़ा ही समझा जाता है। वास्तव में वालक-वालिकाओं को योग्यता परखने के लिए दोनो धर्म ग्रन्थो की जान-कारी एक कसौटी की तरह है। इतने मात्र से समझ लेना चाहिए कि इस पवित्र पुण्यमय स्तोत्र का कितना अधिक माहात्म्य है और जैन लोग इसे कितने आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते है।

इस काव्य-ग्रन्थ ने अपने जिन अपूर्व अनुपम अद्वितीय गुणो के कारण महान् माहात्म्य, अमर्यादित प्रचार और विशेपरूप से ख्याति प्राप्ति की है, वह किसी से भी छिपी हुई नही है। फिर भी हमारा सुपुप्त समाज समी-चीन संस्कृतविद्या की जानकारी के अभाव मे इसके सर्वोत्तम विविध गुणो की जानकारी से वञ्चित होता जाता है।

वह यह नही समझ पाता कि ४८ श्लोक वाले इस छोटे से काव्य-ग्रन्थ मे ऐसा कौनसा अमृत भरा हुआ है, जिसे पान करके न केवल जैन अपि तु इस पर विमुग्ध हुए जैनेतर विद्वानों तक ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

अखण्ड पाठ की विधि

आत्मा को परमात्मा वनाने के लिए यह आवश्यक है कि परमात्मा के पवित्र गुणो का वारम्वार चिन्तन, मनन वा स्तवन कर उन्हें अपने आत्मा में व्यक्त और विकसित करने का प्रयास किया जावे ।

इसी आन्तरिक भावना से भक्तामर स्तवन द्वारा परमात्मा की आराधना से आत्मविकास की परिपाटी जैनसम्प्रदाय मे शताव्दियो से प्रचलित है।

जगद्धितैषी, वीतराग सर्वज्ञ जिनेश के समक्ष भक्तामरस्तोत्र के "अखण्ड पाठ" का क्रम या विधि इस प्रकार है ।

पाठ प्रारम्भ होने के एक दिन पहिले एक वडे तखत पर पंचवर्ण तन्दुलो से इसी पुस्तक मे पेज नं० ४ पर अङ्कित मण्डल (माडना) वनाया जाय ।

दूसरे दिन प्रात. स्नान कर धौत वस्त्र पहिनकर पूजन सामग्री तैयार कर माडने के ऊपर (प्रारम्भ में) उत्तर या पूर्व मुख उच्चासन पर सुन्दर सिंहासन में श्री जिनेन्द्र भगवान की वडी और मझौल दो मूर्तियाँ तथा सामने एक उच्चासन पर श्री विनायक (सिद्ध) यन्त्र स्थापित किया जावे । पश्चात् मङ्गल और शोभा के हेतु अष्ट मङ्गल-द्रव्य, छत्रत्रय और अष्टप्रातिहार्य यथास्थान स्थापित किये जावें ।

सिंहासन से कुछ नीचे एक छोटे वाजौटे पर प्रतिमा की वाँई ओर एक अखण्ड दीपक (जो कार्यसमाप्ति पर्यन्त वरावर जलता रहे) प्रज्वलित किया जावे । पश्चात् वादित्रनाद हो चुकने के अनन्तर उपस्थित सभी जनता उच्चस्वर से 'जैनधर्म की जय' 'आदिनाथ भगवान की जय' 'भक्तामर महामण्डल विधान की जय' वोलें । पश्चात् पद्यान्त मे पुष्पप्रक्षेप करते हुए मङ्गलाचरण वा मङ्गलाष्टक पढा जावे ।

मङ्गलकलश में हल्दी, सुपारी, पुष्प, नकद १।) रखकर ऊपर सीधा

श्रीफल रखकर पीतवस्त्र और पञ्चवर्ण सूत से उसे सुन्दर रीति से बांधना चाहिये। उसके भीतर प्रासुक जल भर कर उसमें पर्याप्त मात्रा में लवंग-चूर्ण डालना चाहिए। यह मङ्गलकलश प्रतिमा की बाँई ओर एक छोटे चौके पर स्थापित करना चाहिए।

तदनन्तर दिग्बन्धन, परिणामशुद्धि, रक्षासूत्रबन्धन, तिलककरण, अङ्ग-शुद्धि और रक्षा-विधान करना चाहिये।

विधिपूर्वक जलधारा (अभिषेक) और शान्तिधारा कर २४, ४८, या ७२ घंटे तक 'अखण्ड पाठ' करने का संकल्प कर जयध्वनिपूर्वक श्री भक्तामरस्तोत्र का पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।

यह अखण्ड पाठ प्रतिमा के सामने बैठकर समान स्वर में एकस्थल पर अनेक व्यक्ति सकल्पित समय तक करे। यदि बीच में पाठकर्त्ता बदले जावें तो जब तक नवीन पाठकर्त्ता पाठ-प्रारम्भ न कर दे तब तक पूर्व पाठ-कर्त्ता अपना स्थान नही छोडें।

संकल्पित समय पूरा होने पर मङ्गलाष्टक तथा शान्तिपाठ पढ कर चौकी पाटे उठाकर उचित स्थान पर टेबिल जमाकर पुन भगवान् का अभिषेक एवं यन्त्र की शान्तिधारा की जाय। पश्चात्

विधिपूर्वक 'नित्यपूजा' कर श्रीभक्तामर महामण्डल पूजा (विधान) किया जावे। पूजन समाप्ति के बाद शान्तिकलशाभिषेक (पुण्याहवाचन) शान्ति-विसर्जन, आरती, परिक्रमा वगैरह यथाविधि किये जावें। यदि पाठके साथ जाप्य भी किया गया हो तो विधिपूर्वक हवन भी किया जावे।

आवश्यक सामग्री

हल्दीगांठ, सुपारी, श्रीफल, पीलेसरसो, पीतवस्त्र, पञ्चवर्णसूत, शुद्ध घृत, रुई, दीपक, माचिस, अगरबत्ती, लवङ्ग, शुद्ध धूप, धूपदान, फूल-मालाएँ, नकद रुपया, चुवन्नियाँ, मङ्गलकलश, चौकी, पाटे, आसनी, दीपक बड़े, दीपक छोटे, कंडील, अष्टद्रव्य, बनयान, नवीन, धोती दुपट्टे, छन्ना, अँगोछी, रूमाल, पञ्चवर्ण चावल, तख्त, अष्ट-मङ्गलद्रव्य, अष्टप्रातिहार्य, छत्रत्रय, पाठ की पुस्तकें।

मङ्गलाचरण

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥

नमः स्यादर्हद्भ्यो, विततगुणराड्भ्यस्त्रिभुवने ।
नम स्यात् सिद्धेभ्यो, विगतगुणवद्भ्यः सविनयम् ॥

नमो ह्याचार्येभ्यः, सुरगुरुनिकारो भवति यै ।
उपाध्यायेभ्योऽथ, प्रवरमतिधृद्भ्योऽस्तु च नमः ॥ २ ॥

नमः स्यात् साधुभ्यो, जगदुदधिनौभ्यः सुरुचित ।
इदं तत्त्वं मन्त्रं, पठति शुभकार्ये यदि जनः ॥

असारे संसारे, तव पदयुग-ध्यान-निरतः ।
सुसिद्धः सम्पन्नः स हि भवति दीर्घायुररुज. ॥ ३ ॥

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा., पूज्या उपाध्यायका ॥

श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्ठिन. प्रतिदिन, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ४ ॥

१—अनुष्टुप । २, ३—शिखरिणी । शार्दूलविक्रीडित ।

अथ मङ्गलाष्टकम्

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

श्रीमन्नम्र—सुरासुरेन्द्र—मुकुट—प्रद्योतरत्न — प्रभा—
भास्वत्पादनखेन्दव. प्रवचनाम्भोधीन्दव: स्थायिन. ।
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठका· साधव·,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरव·, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १ ॥

नाभेयादिजिना· प्रशस्तवदना·, ख्याताश्चतुर्विंशति,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ॥
ये विष्णुप्रतिविष्णुलाङ्गलधरा, सप्तोत्तरा विंशति,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिपष्ठिपुरुपा कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ २ ॥

ये पञ्चौषधिऋद्धय श्रुततपो-वृद्धिं गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशलाश्चाष्टौविधाश्चारिणः ॥
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वरा· ।
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ३ ॥

ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे, मेरौ कुलाद्रौ स्थिता ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा, वक्षाररूप्याद्रिषु ॥
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहा·, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ४ ॥

कैलाशो वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरी ।
चम्पा वा वसुपूज्यसज्जिनपते. सम्मेदशैलोऽर्हताम् ॥
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरी, नेमीश्वरस्यार्हताम् ।
निर्वाणावनय. प्रसिद्धविभवा', कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

मर्पो हारलता भवत्यसिलता, सत्पुष्पदामायते ।
सम्पद्येत रसायन विषमपि, प्रीतिं विधत्ते रिपुः ॥
देवा यान्ति वश प्रसन्नमनसा, किं वा बहु ब्रूमहे ।
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति तरा, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ६ ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवता, जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जात. परिनिष्क्रमेण विभवो, य' केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा, सम्पादित' स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ७ ॥

आकाशं मूर्त्यभावा–दघकुलदहना–दग्निरुर्वी क्षमाप्त्या ।
नै'सगाद्वायुरापः प्रगुणशमतया, स्वात्मनिष्ठैः सुयज्वा ॥
सोमःसौम्यत्वयोगा-द्रविरिति च विदुस्तेजसः सन्निधानाद्,
विश्वात्मा विश्वचक्षु-र्वितरतु भवता, मङ्गलं श्रीजिनेश' ॥ ८ ॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं, सौभाग्यसम्पत्करं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखाः ।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै', धर्मार्थ कामान्विता ।
लक्ष्मी र्लभ्यत एव मानवहिता, निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥ ९ ॥

॥ इति मङ्गलाष्टकम् ॥

मङ्गलकलश स्थापना

ओम् अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमाने श्रीभक्तामरस्तोत्रस्याखण्डकीर्तनकर्मणि अमुकवीरनिर्वाण-सम्वत्सरे अमुकमासे, अमुकतिथौ, अमुकदिने, प्रशस्तलग्ने, भूमिशुद्ध-यर्थं, शान्त्यर्थं, पुण्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतबीजपूरादिशो-भितं शुद्धप्रासुकतीर्थ-जलपूरित मंगलकलशस्थापन करोमि श्री क्ष्वी क्ष्वी हं स स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ कर शास्त्र जी के उत्तर कोने में जल, अक्षत, पुष्प, हलदी, सुपारी और १।) रुपया सहित मङ्गलकलश स्थापित किया जावे। इस कलश को पुण्याहवाचन कलश भी कहते हैं।

ओ ह्रा णमो अरिहंताण ह्रा पूर्वदिशासमागतविघ्नान् निवारय निवारय मा रक्ष रक्ष स्वाहा ।

यह मन्त्र पढकर पूर्व दिशा की ओर पीले सरसों क्षेपे ।

ओ ह्री णमो सिद्धाणं ह्री दक्षिणदिशासमागतविघ्नान् निवा-रय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा ।

यह मन्त्र पढकर दक्षिण दिशा मे पीले सरसो क्षेपे ।

ओ ह्रू णमो आयरीयाण ह्रू पश्चिमदिशासमागतविघ्नान् निवारय निवारय मा रक्ष रक्ष स्वाहा ।

यह मन्त्र पढकर पश्चिम दिशा में पीले सरसो क्षेपे ।

ओ ह्रौ णमो उवज्झायाणं ह्रौ उत्तरदिशासमागतविघ्नान् निवारय निवारय मा रक्ष रक्ष स्वाहा ।

यह मन्त्र पढकर उत्तर दिशा की ओर पीले सरसो क्षेपे ।

ओ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्र सर्वदिशासमागतविघ्नान् निवारय निवारय मा रक्ष रक्ष स्वाहा ।

यह मन्त्र पढकर सर्व दिशाओ मे पीले सरसो क्षेपे ।

परिणाम-शुद्धि-मन्त्र

विधिं विधातुं यजनोत्सवेऽहं, गेहादिमूर्च्छामपनोदयामि ।
अनन्यचित्ताकृतिमादधामि, स्वर्गादिलक्ष्मीमपि हापयामि ।

यह पद्य पढकर प्रतिज्ञा करे कि मै इस विधान पर्यन्त व्यापारादि की चिन्ता छोड एकाग्रता से कार्य करूँगा ।

रक्षासूत्रबन्धनमन्त्र तथा तिलकमन्त्र

मगल भगवान्वीरो, मगलं गौतमो गणी ।
मगल कुन्दकुन्दाद्या, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

ओ ह्री पञ्चवर्णसूत्रेण करे रक्षाबन्धनं करोमि ।

अङ्गशुद्धिमन्त्र

ओ हा ह्री ह्रू ह्रौं ह्र मम सर्वागशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर अङ्गशुद्धि के लिये तिलक लगाना चाहिये ।

रक्षा-मन्त्र

ओ नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा ।

पीले सरसो और पुष्पो को इस मन्त्र से सात बार मन्त्रित कर फूंक देकर सर्व पात्रो पर छिटकना चाहिये ।

सङ्कल्प-मन्त्र

ओं ह्री मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे ‥ ‥देशे ‥ ‥ नगरे ‥ ‥चैत्यालये……… श्रीवीरनिर्वाणसम्वत्सरे………… मासे‥ पक्षे तिथौ शुभ वेलायां परमार्थानां देवशास्त्रगुरूणां सन्निधौ

परमशान्तिक श्रावकाणां विघ्नापहा भक्तिनी शान्तिकपौष्टिकनिमि-त्तार्थं निरवद्यं अनुष्ठानप्रारम्भ अनुष्ठानपर्यन्तं होता ... पर्यन्त महाभक्तिमन्त्रगर्भितम् अनिन्द्यभोगफलप्रदम् श्री भक्तामर-स्तोत्रस्य नवपाठ करिष्यामहे ।

जलधारा, अभिषेकपाठ

श्रीमन्नतामरशिरस्तटरत्नदीप्ती—
तोयावभासिचरणाम्बुजयुग्ममीशम् ।
अर्हन्तमुन्नतपदप्रदमाभिनम्य,
त्वन्मूर्तिषूद्यदभिषेकविधिं करिष्ये ॥ १ ॥

अथ पौर्वाह्णिकमाध्याह्निकापराह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीपञ्चमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् । इसको पढ़कर ९ बार णमोकार मन्त्र की जाप देना चाहिये । प्रात काल के समय पौर्वाह्णिक, मध्याह्नकाल के समय माध्याह्निक और अपराह्न के समय आपराह्णिक बोलना चाहिये ।

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
शक्रादय. सुरवराः स्नपयन्ति भक्त्या ।
सद्भावलब्धिसमयादिनिमित्तयोगा—
त्तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि ॥ २ ॥

इति अभिषेकप्रतिज्ञायै चतुष्पादे पुष्पाञ्जलि क्षिपाम ।

श्रीपीठक्लृप्ते वितताक्षतौघे, श्रीप्रस्तरे पूर्णशशाङ्ककल्पे ।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीति वार्तां, सत्यापयन्ती श्रियमालिखामि ।

ओं ह्रीं अर्हं श्रीलेखनं करोमि ।

कनकादिनिभं कम्रं, पावनं पुण्यकारणम् ।
स्थापयामि परं पीठं, जिनस्नानाय भक्तितः ॥४॥

ओ ह्रीं उच्चचतुष्पादे कमनीयस्थाल्या सिंहासनस्थापनम् ।

भृङ्गार—चामर—सुदर्पण—पीठ—कुम्भ—
ताल—ध्वजा—तप—निवारक—भूषिताग्रे ।
वर्धस्व नन्द जय पाठपदावलीभिः,
सिंहासने ! जिन भवन्तमहं श्रयामि ॥५॥
वृषभादिसुवीरान्तान्, जन्माप्तौ जिष्णुर्चचितान् ।
स्थापयाम्यभिषेकाय, भक्त्या पीठे महोत्सवैः ॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ ! भगवन्निह पाण्डुकशिलापीठे सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ । इति प्रतिमास्थापनम् । घण्टानादपूर्वकं जयघोषश्चेति । जहाँ तक हो प्रतिमा आदिनाथ भगवान् की स्थापित की जाय ।

श्रीतीर्थंकृत्स्नपन—वर्यविधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धिवारिभिरपूरयदर्थ—कुम्भान् ।
ताँस्तादृशानिव विभाव्य यथार्हंनीयान्
संस्थापये कुसुमचन्दनभूषिताग्रान् ॥७॥
शातकुम्भीयकुम्भौघान् क्षीराब्धेस्तोयपूरितान् ।
स्थापयामि जिनस्नाने, चन्दनादिसुचर्चितान् ॥८॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतु.कोणेषु चतु कलशस्थापनं करोमि ।
चौकी पर चारों दिशाओं में चार शकल स्थापित किये जावें ।

आनन्द—निर्भर—सुर—प्रमदादिगानै—
वादित्रपूर—जयशब्द—कलप्रशस्तैः ।
उद्गीयमान—जगतीपति—कीर्तिमेन,
पीठस्थलीं वसुविधार्चनयोल्लसामि ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीस्नानपीठायार्घ्यम् । यागरोपणम् । जयशब्दोच्चारणम् ।

कर्मप्रबन्धनिगडैरपि हीनताप्त,
ज्ञात्वापि भक्तिवशत. परमादिदेवम् ।
त्वां स्वीयकल्मषगणोन्मथनाय देव,
शुद्धोदकैरभिनयामि नयार्थतत्त्वम् ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं हं हं सं तं तं तं पं पं झं झं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा । इत्युच्चार्य शुद्धजलेन जिनेन्द्रस्य स्नपन कार्यम् ।

तीर्थोत्तमभवै र्नीरे., क्षीरवारिधि—रूपकै ।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान्सर्वार्थसिद्धिदान् ॥११॥
दूरावनम्र—सुरनाथ—किरीटकोटी—
सलग्नरत्नकिरणच्छवि—धूसराङ्घ्रिम् ।
प्रस्वेदतापमल—मुक्तमपि प्रकृष्टै—
र्भक्त्या जलै र्जिनपतिं बहुधाऽभिषिञ्चे ॥१२॥

अथाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे ‥ ‥ देशे ……… नगरे……… मासे शुभे ‥ ‥ पक्षे ‥ ‥ तिथौ ‥ वासरे ……… ‥ जिनमन्दिरे पूजनकारकश्रोतृगणतापसार्यिकाश्रावक-श्राविकाणा

सकलकर्मक्षयार्थं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्कर-परमदेवान् जलेन अभिषिञ्चे ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि ।

नोट —

इस श्लोक और मन्त्र को एक जपमाला द्वारा १०८ वार पढते हुये क्रमश १०८ कलशो द्वारा जलाभिषेक करे। अर्थात् एक वार श्लोक और मन्त्र पढकर १ कलश की धारा छोडे। इसी प्रकार १०८ वार किया जावे ।

पानीयचन्दनसदक्षतपुष्पपुञ्ज—
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फलव्रजेन ।
कर्माष्टकक्रथनवीर—मनन्तशक्तिं,
सपूजयामि महसा महसां निधानम् ॥१३॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यम् ।

हे तीर्थपा निजयशोधवलीकृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भवदुःखमहागदानाम् ।
सद्भव्यहृज्जनित—पङ्कजबन्धकल्पा,
यूयं जिना सततशान्तिकरा भवन्तु ॥१४॥

इत्युक्त्वा शान्त्यर्थं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

श्री शान्तिधारा पाठ

ओ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं व मं ह स त त वं वं मं मं ह ह्ं सं स तं तं पं पं झ झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रा द्रा द्रो द्रीं द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ।

ओं ह्रीं क्रों अस्माकं पापं खण्ड खण्ड, हन हन, दह दह, पच पच, पाचय पाचय, शीघ्र कुरु कुरु। ओं नमो अर्हं क्ष क्ष्वी क्ष्वी ह स. क्ष वं प: ह. हः क्षा क्षी क्षू क्षें क्षैं क्षो क्षौं क्ष क्षः. क्ष्वी ह्रा ह्री ह्रू ह्रे ह्रै ह्रो ह्रौ ह्र.। द्रां द्री द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठ. ठः।

अस्माकं श्रीरस्तु, वृद्धिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु, शान्तिरस्तु, कान्तिरस्तु, कल्याणमस्तु स्वाहा। एवम् अस्माकं कार्यसिद्ध्यर्थं, सर्वविघ्ननिवारणार्थं, श्रीमद्भगवदर्हत्सर्वज्ञपरमेष्ठिपरमपवित्राय नमो-नम:। श्रीशान्तिभट्टारकपादपद्मप्रसादात् अस्माकं सद्धर्म-श्रीबलायु-रारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु। स्वशिष्यपरशिष्यवर्गाः प्रसीदन्तु न.।

ओं श्रीवृषभादिवर्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्त: सर्वज्ञा: परममाङ्गल्यनामधेया: इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु। सद्धर्म-कार्येषु इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छन्तु न.।

ओं नमोऽर्हते भगवते, श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थङ्कराय द्वादश-गणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यानपवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयम्भुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परमसुखाय, त्रैलोक्यमहिताय, अनन्तसंसारचक्र-प्रमर्दनाय, अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय, सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्यवशङ्कराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे, ऋष्यार्यिकाश्रावक-श्राविकाप्रमुखचतुस्सङ्घोपसर्गविनाशाय, घातिकर्मविनाशाय, अघा-तिकर्मविनाशाय, अपवादम् अस्माकं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। मृत्युं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। अतिकामं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। रति-कामं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। क्रोधं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द।

अग्नि वायुभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वशत्रु छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वोपसर्गं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वविघ्नं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वराजभय छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वचोरभय छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वदुष्टभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वमृगभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द ।

सर्वपरमन्त्र छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वमात्मघातभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वशूलभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वक्षयरोगं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वकुष्ठरोग छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वज्वरमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वगजमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वाश्वमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द ।

सर्वगोमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वमहिषमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वधान्यमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्ववृक्षमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वगुल्ममारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वपत्रमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । संर्वपुष्पगारिं छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द । सर्वफलमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द ।

सर्वराष्ट्रमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वदेशमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वविषमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वक्रूररोगं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्ववेतालशाकिनीभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्ववेदनीयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द । सर्वमोहनीयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द ।

ओ चक्रविक्रमतेजोबलशौर्यशांति कुरु कुरु। सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु। सर्वभव्यानन्दनं कुरु कुरु। सर्वगोकुलानन्दन कुरु कुरु। सर्वग्रामनगरखेटखर्वटमण्डपत्तनद्रोणामुखसहानन्दन कुरु कुरु। सर्वलोकानन्दनं कुरु कुरु। सर्वदेशानन्दनं कुरु कुरु। सर्वयजमानानन्दनं कुरु कुरु।

व्याधिव्यसनवर्जितम् अभयक्षेमारोग्य स्वस्तिरस्तु, शान्तिरस्तु, शिवमस्तु, कुलगोत्रधन धान्य सदास्तु। चन्द्रप्रभ–पुष्पदन्त–शीतल–वासुपूज्य–मल्लि–मुनिसुव्रत–नेमिनाथ–पार्श्वनाथवर्धमाना· प्रसीदन्तु। इत्यनेन मन्त्रेण शान्तिधाराविधानम्।

यत्सुख त्रिषु लोकेषु, व्याधिव्यसनवर्जित।
अभय क्षेममारोग्य, स्वस्तिरस्तु विधायिने॥

श्रीशान्तिरस्तु! शिवमस्तु! जयोऽस्तु! नित्यमारोग्यमस्तु! अस्माक पुष्टिरस्तु! समृद्धिरस्तु! कल्याणमस्तु! सुखमस्तु! अभिवृद्धिरस्तु! कुलगोत्रधन सदास्तु! सद्धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ओ ह्री श्री क्ली अर्ह असिआउसा सर्वशान्ति कुरुत
कुरुत स्वाहा।

आयुर्वल्लीविलास सकल–सुख–फलैर्द्राघयित्वाश्वनल्प।
धीरं हीर शरीर, निरुपममुपनयत्वातनोत्वच्छकीर्तिम्॥
सिद्धि वृद्धि समृद्धि, प्रथयतु तरणिस्फूर्यदुच्चै प्रताप।
कांति शाति समाधि, वितरतु जगतामुत्तमा शान्तिधारा॥

इति शान्तिधारापाठ समाप्तः

नत्वा परीत्य निजनेत्रललाटयोश्च,
व्याप्त क्षणेन हरतादघसंचयं मे।
शुद्धोदकं जिनपते! तव पादयोगाद्,
भूयाद् भवातपहर धृतमादरेण ॥ १५ ॥

मुक्तश्रीवनिता—करोदकमिद, पुण्याङ्कुरोत्पादकम्।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्र - चक्रपदवी—राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान — चरित्रदर्शनलता — संवृद्धिसम्पादकम्
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गन्धोदकम् ॥ १६ ॥

इति प्रदक्षिणां नमस्कारं च कृत्वा जिनचरणोदकं शिरसि धारयामि। इन श्लोकों को पढकर श्रीजिनेश का चरणोदक स्वयं लेकर दूसरों को भी देवे।

नत्वा मुहु — र्निजकरैरमृतोपमेयैः,
स्वच्छै र्जिनेन्द्र! तव चन्द्र—करावदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्तरम्ये
देहे स्थिताञ्जलकणान्परिमार्जयामि ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बमार्जनं करोमि।

स्नान विधाय—भवतोऽष्टसहस्रनाम्ना—
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
आदातुमिष्टिमिन! तेऽष्टतयी विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि ॥ १८ ॥

इति सहस्रनामस्तोत्रं तदंशं वा पठित्वा जिनबिम्ब सिंहासने स्थापयित्वा पूजनप्रतिज्ञानाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

जल–गन्धाक्षतै' पुष्पैः, चरुदीपसुघूपकैः।
फलैरर्घ्यैं जिनमर्चे, जन्मदुःखापहानये ॥ १९ ॥

ओ ह्री श्रीसिंहासन (पीठ) स्थितजिनायार्घ्यम् ।

इमे नेत्रे जाते, सुकृतजलसिक्ते सफलिते
ममेदं मानुष्यं, कृतिजनगणादेयमभवत् ।
मदीयाद् भल्लाटा—दशुभवसुकर्माटनमभूत्
सदेदृक् पुण्यौघो, मन भवतु ते पूजनविधौ ॥ २० ॥

इतीष्टप्रार्थना कृत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

श्रीमन्महामुनि—सोमसेनप्रणीता

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मण्डल पूजा

ॐ जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

आर्या-छन्द

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

चत्तारि मंगलं

(१) अरिहंता मंगलं (२) सिद्धा मंगलं (३) साहू मंगलं (४) केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा

(१) अरिहंता लोगुत्तमा (२) सिद्धा लोगुत्तमा (३) साहू लोगुत्तमा (४) केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि

पूर्व-पीठिका

श्रीमन्त-मानम्य जिनेन्द्रदेव, पर पवित्र वृषभ गणेश।
स्याद्वादवारानिधिचन्द्रविम्बं, भक्तामरस्यार्चनमात्मसिद्धयै।
वक्ष्ये सुवीर करुणार्णवं च, श्रीभूषणं केवलज्ञानरूपं।
अलक्ष्यलक्ष्य प्रणमाम्यलं वै, भक्तामर सिद्धवधूप्रियं वै॥

आदौ भव्यजनेनैव, गत्वा चैत्यालय प्रति।
नन्तव्यः परया भक्त्या, सर्वज्ञ शुद्धलक्षणः॥

ततः सद्गुरु—मानन्य, विनयानत—चेतसा।
प्रार्थना सुकृता भव्यै, पूजायै भवशुद्धितः॥
दीयतां सुगुरो! आज्ञा, पूजा कर्तु शुभा वरं।
इत्युक्ते गुरुणाभाणि, विधि भक्तामरस्य वै॥

श्रीखण्डागुरु-कर्पूर, नारिकेल-फलानि च।
प्रचुराक्षत-पुष्पौघा, नक्षताञ्चरुसञ्चयान्॥
मेलयित्वा प्रमोदेन, चद्रोपमध्वजादिकान्।
दीपान् धूपान् महावाद्य–, गीतरावविराजितान्॥

तोरणै र्मणि-सन्नद्धै–, रुज्ज्वलै-श्चामरैस्तथा।
मण्डपैः पञ्चवर्णैश्च, द्रव्यै र्मङ्गलसूचकै.॥

वसुदेव—मिते कोष्ठे, वर्तुलाकार-मण्डिते।
रचयेद् वेदिका तत्र, श्रीजिनार्चन-हेतवे॥

नातिवृद्धो न हीनाङ्गो, न कोपो न च वालकः।
मलिनो न न मूर्खश्च, सर्वव्यसन-वर्जितः॥

कलाविज्ञान-सम्पूर्णो, ध्यानाढ्यः शान्तवाक्पटुः ।
धर्मिष्ठो मृदुचेताः सन्, करुणा-रस-पूरितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरो धर्मी, सरलो-करण-क्षमः ॥

श्रीवृषभदेवस्तुतिः

(बसन्ततिलकावृत्तम्)

श्रीनाभिराजतनुजं शुभमिष्टिनाथं,
पापापहं मनुजनागसुरेशसेव्यम् ।
संसार - सागर - सुपोतसमं पवित्रं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ।।२।।

यस्यात्र नाम जपतः पुरुषस्य लोके,
पाप प्रयाति विलयं क्षणमात्रतो हि ।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तथास्तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ।।३।।

सर्वार्थसिद्धिनिलयाद्भुवि यस्य पुण्यात्,
गर्भावतार - करणेऽमर - कोटिवर्गैः ।
वृष्टिः कृता मणिमयी पुरुदेशतस्तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ।।४।।

जन्मावतारसमये सुरवृन्दवन्द्यैः,
भक्त्यागतैः परमदृष्टितया नतस्तैः ।
नीत्वा सुमेरुमभिवन्द्य सुपूजितस्तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ।।५।।

षट्कर्म - युक्तिमवदर्श्य दया विधाय,
सर्वा. प्रजा. जिनधुरेण वरेण येन ।
सञ्जीविता· सविधिना विधिनायकं तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ।।६।।

गणधर - मुनि - मेव्य, "सोमसेनेन" पूज्य',
'वृषभजिनपति' श्री, वाञ्छितां मे प्रदद्यात् ॥१२॥

इदं स्तोत्र पठित्वा हृदयस्थितसिंहासनस्योपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

अथ स्थापना

'मोक्षसौख्यस्य कर्तृणा, भोक्तृणा शिवसम्पदाम् ।
आह्वाननं प्रकुर्वेऽहं, जगच्छान्ति-विधायिनाम् ॥

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदये अवतर अवतर संवौषट्—इत्याह्वाननम् ।

देवाधिदेवं वृषभं जिनेन्द्रं, इक्ष्वाकुवंशस्य परं पवित्रं ।
संस्थापयामीह पुर' प्रसिद्धं, जगत्सुपूज्यं जगता पतिं च ॥

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ' । इति स्थापनम् ।

कल्याणकर्ता, शिवसौख्यभोक्ता, मुक्ते सुदाता, परमार्थयुक्त. ।
यो वीतरागो, गतरोषदोष', तमादिनाथं, निकटं करोमि ॥

ॐ ह्री श्री क्ली महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदय-समीपे सन्निहितो भव भव वषट् । इति सन्निधिकरणम् ।

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

अथाष्टकम्

गाङ्गेया यमुनाहरित्सुसरिताम्, सीतानदीया तथा।
क्षीराब्धिप्रमुखाब्धितीर्थमहिता, नीरस्य हैमस्य च ॥
अम्भोजीयपरागवासितमहद्गन्धस्य धारा सती।
देया श्रीजिनपादपीठकमलस्याग्रे सदा पुण्यदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय जलम्।

श्रीखण्डाद्रिगिरौ भवेन गहने, ऋक्षैः सुवृक्षै घनैः।
श्रीखण्डेन सुगन्धिना भवभृतां, सन्ताप-विच्छेदिना ॥
काश्मीरप्रभवैश्च कुङ्कुमरसैः, घृष्टेन नीरेण वै।
श्रीमाहेन्द्रनरेन्द्रसेवितपदं, सर्वज्ञदेवं यजे ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय चन्दनम्।

श्रीशाल्युद्भवतन्दुलैः सुविलसद्गन्धै र्जगल्लोभकैः।
श्रीदेवाब्धि-सरूप-हार-धवलैः नेत्रै र्मनोहारिभिः ॥
सौधौतैरतिशुक्तिजातिमणिभिः, पुण्यस्य भागैरिव।
चन्द्रादित्यसमप्रभं प्रभुमहो, सञ्चर्चयामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय अक्षतम्।

मन्दाराब्ज-सुवर्ण-जाति-कुसुमैः, सेन्द्रीयवृक्षोद्भवैः,
येषा गन्धविलुब्ध-मत्त-मधुपैः, प्राप्त प्रमोदास्पदम्।

मालाभिः प्रविराजिभिः जिन ! विभो देवाधिदेवस्य ते,
सञ्चर्चे चरणारविन्द-युगलं, मोक्षार्थिना मुक्तिदम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय पुष्पम् ।

शाल्यन्नं घृतपूर्णसर्पिसहितं, चक्षुर्मनोरञ्जकम् ।
सुस्वादु त्वरितोद्भवं मृदुतरं, क्षीराज्यपक्व वरम् ॥
क्षुद्रोगादिहरं सुबुद्धिजनकं, स्वर्गापवर्गप्रदम् ।
नैवेद्यं जिन-पाद पद्म-पुरत, संस्थापयेऽहं मुदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय नैवेद्यम् ।

अज्ञानादि-तमोविनाशन-करै, कर्पूरदीप्तै वरैः ।
कार्पासस्य विवर्तिकाग्रविहितै, दीपै प्रभाभासुरैः ॥
विद्युत्कान्ति-विशेष-सशय-करैः, कल्याणसम्पादकैः ।
कुर्यादार्तिहरार्तिकां जिन ! विभो ! पादाग्रतो युक्तितः ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय दीपम् ।

श्रीकृष्णागरु-देवतारु - जनितैः, धूमध्वजोद्वर्तिभिः ।
आकाशं प्रति व्याप्तधूम्रपटलै, आह्वानितैः षट्पदैः ॥
यः शुद्धात्मविबुद्धकर्मपटलोच्छेदेन जातो जिनः ।
तस्यैव क्रमपद्मयुग्मपुरत, सन्धूपयामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय धूपम् ।

नारिङ्गाम्र-कपित्थ-पूग-कदली–द्राक्षादि-जातैः फलैः।
चक्षुश्चित्तहरैः प्रमोदजनकैः, पापापहैर्देहिनाम् ॥
वर्णाद्यैः मधुरैः सुरेशतरुजैः, खर्जूरपिण्डैस्तथा।
देवाधीश-जिनेश-पाद-युगलं, सम्पूजयामि क्रमात् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय फलम् ।

नीरैश्चन्दन-तन्दुलैः सुसघनैः, पुष्पैः प्रमोदास्पदैः।
नैवेद्यैः नवरत्नदीपनिकरैः, धूमैस्तथा धूपजैः॥
अर्घ्यं चारुफलैश्च मुक्तिफलदं, कृत्वा जिनाङ्घ्रि-द्वये।
भक्त्या श्रीमुनिसोमसेनगणिना, मोक्षो मया प्रार्थितः॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ।

जिनेन्द्रपादाब्जयुगस्य भक्त्या, जिनेन्द्रमार्गस्य सुरक्षपालं।
सम्यक्त्वयुक्तं गुणरश्मिपूर्णं, गोवक्त्रयक्षं परिपूजयामि॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवपादारविन्दमेवकगोवक्त्रयक्षाय
आगतविघ्ननिवारकाय अर्घ्यम् ।

चक्रेश्वरी जैनपदारविन्द—सहानुरक्ता जिनशासनस्थां।
विघ्नौघहन्त्री सुखधामकर्त्री, भक्त्या यजे तां सुखकार्य-
कर्त्रीम् ॥

ॐ ह्रीं जिनमार्गरक्षाकर्यै दारिद्र्यनिवारिकायै
चक्रेश्वर्यै अर्घ्यम् ।

अथाष्टदलकमलपूजा

[१]

(वसन्ततिलकावृत्तम्) सर्वविघ्ननाशक

भक्तामर-प्रणतमौलि-मणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पापतमो-वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

नम्रासुरासुरनृनाथशिरांसि यस्य,
सम्बिम्बितानि नखविंशतिदर्पणेऽस्मिन् ।
तं विश्वनाथमभिवन्द्य सुपूजयामि,
पक्वान्न-पुष्प-जलचन्दनतन्दुलाद्यैः ॥१॥

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियो, की सु-प्रभा का जो भासक।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक॥
भव-जल पतित जनो को जिसने, दिया आदि मे अवलम्बन।
उनके चरण-कमल का करते, सम्यक बारम्बार नमन ॥१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाण, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रति चक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

(मत्र) ॐ ह्रा ह्री ह्रूं श्री क्ली ब्लूं क्रौ ॐ ह्री नम. स्वाहा ।

ॐ ह्री विश्वविघ्नहराय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥ १ ॥

(विधि) ऋद्धि और मंत्र श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन १०८ वार जपने से समस्त विघ्न नष्ट होते है ॥ १ ॥

अर्थ—विशेष वैभवशाली देवों से पूजित, अपने तथा औरों के पापसमूह के नाशक और अपने वीतराग उपदेश द्वारा प्राणियों को संसारसमुद्र से निकालने वाले जिनेन्द्रदेव के चरणों को नमस्कार कर मैं यह स्तुति करता हूं ।।१।।

Having duly bowed down to the feet of Jina, which, at the beginning of the yuga, was the prop for men drowned in the ocean of worldliness, and which illumine the lustre of the gems of the prostrated heads of the devoted gods, and which dispel the vast gloom of sins. 1.

[२]

सकलरोगनाशक

यः संस्तुतः सकलवाङ्-मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूत- बुद्धि-पटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रै र्जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।२।।

रम्यैः सुसंस्तवन - कोटिभि - रादरेण,
देवैः स्तुतो विविधशस्त्रयुतैं जिनो यः ।
संसारसागर - सुतारण - नौसमानं,
पूजामि चारुचरु - चन्दन - पुष्पतोयैः ।।२।।

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी ।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जन-जन मन-हारी ।।
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की ।
जगनामी - सुखधामी तद्भव - शिवगामी अभिरामी की ।।२।।
(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं ।

स्तुति को तय्यार हुआ हूँ, मै निर्बुद्धि छोड़ के लाज।
विज्ञजनो से अर्चित हे प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ॥
जल मे पड़े चन्द्र-मडल को, बालक बिना कौन मतिमान।
सहसा उसे पकडने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्य सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा।

ॐ ह्रीं मत्यादिसुज्ञानप्रकाशनाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥३॥

(विधि) श्रद्धापूर्वक सात दिन तक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार ऋद्धिमंत्र जपने से सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥३॥

अर्थ—हे देवों के द्वारा पूजनीय जिनेन्द्र ! विशेष बुद्धि के न होने पर भी जो मैं आपकी स्तुति करने में तत्पर हो रहा हूँ; यह मेरी ढीठता ही है, क्योंकि मेरा यह प्रयत्न पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्र के प्रतिबिम्ब को बड़े चाव से पकड़ने वाले बालक की भांति ही है ॥३॥

Shameless I am, O Lord, as I, though devoid of wisdom, have decided to eulogise you, whose feet have been worshipped by the gods Who, but an infant, suddenly wishes to grasp the disc of the moon reflected in water ? 3.

[४]

जलजन्तु-मोचक

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-कालपवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

चन्द्रस्य कान्तिसदृशान् परमान् गुणौघान्,
कोऽसौ पुमान् तव विभो ! कथितुं समर्थः ।
तस्माद् विधाय जिनपूजनमेव कार्यम् ।
मुक्तिं व्रजामि वरभक्ति-जवात् देव ! ।।४।।

हे जिन ! चंद्रकान्त से बढकर, तव गुण विपुल अमलअतिश्वेत ।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत ।।
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलयपवन से बढा अपार ।
कौन भुजाओ से समुद्र के, हो सकता है परले पार ।।४।।

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्री श्रीं क्ली जलयात्रादेवताभ्यो नम स्वाहा ।

ॐ ह्री नानादुःखसमुद्रतारणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ।।४।।

(विधि) सात दिन तक प्रतिदिन १००० वार श्रद्धापूर्वक ऋद्धिमंत्र जपने तथा २१ कंकरियो को क्रमशः एक एक कंकरी को उक्त मंत्र से मंत्रित कर जल में डालने से जाल में मछलियाँ नही फँसती ।।४।।

अर्थ—हे गुणनिधे ! जिस तरह प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु से कुपित और लहराते हुये हिंसक मगरमच्छों से परिपूर्ण समुद्र को कोई भुजाओं से नहीं तर सकता, उसी प्रकार बृहस्पति के समान बुद्धिमान पुरुष भी, आपके निर्मल गुणों का वर्णन नहीं कर सकता, फिर मुझ अल्पज्ञ की तो बात ही क्या है ? ।।४।।

Lord thou art the very ocean of virtues who though vying in wisdom with the preceptor or the gods, can describe thine excellences spotless like the moon ? Whoever can cross with hands the ocean, full of alligators lashed to fury by the winds of the Doomsday. 4

[५]

अक्षिरोग संहारक

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतिशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

मूढोऽप्यहं जिनगुणेषु सदानुरक्तः,
भक्तिं करोमि मतिहीन उदार-बुद्धया।
कार्यस्य सिद्धिमुपयाति सदैव पुण्यात्,
तस्माद्व्रजामि जिनराजपदारविन्दम् ॥५॥

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार ॥
निजशिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रँगी ॥५॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं।

(मंत्र) ॐ ह्री श्री क्लीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

ॐ ह्री सकलकार्यसिद्धिकराय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥ ५ ॥

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन ऋद्धिमंत्र का १००० बार जाप करने से सब तरह के नेत्ररोग-शमन हो जाते हैं।

अर्थ—हे मुनिनाथ! जैसे हरिणी शक्ति न रहते हुये भी केवल प्रेमवश अपने बच्चे की रक्षा के लिये सिंह का सामना करती है, इसी

प्रकार मैं भी बौद्धिकशक्ति न होने पर भी श्रद्धामात्र से आपका स्तवन करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ ॥ ५ ॥

Though devoid of power yet urged by devotion, O Great Sage, I am determined to eulogise you. Does not a deer, not taking into account its own might, face a lion to protect its young-one out of affection ? 5.

[६]

सरस्वती-भगवती-विद्या प्रसारक

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः ॥६॥

ये सन्ति शास्त्रसबला प्रहसन्ति ते मां,
भक्त्या तथापि जिनभक्तिवशात् करोमि ।
पूजाविधिं जिनपतेः सुरचित्तचौरं,
स्वर्गापवर्गसुखदं परम गुणौघम् ॥६॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानो से, हास्य कराने का ही धाम ।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठो याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु मे, जगजन मनहर अति अभिराम ।
उसमे हेतु सरस फल फूलो, के युत हरे-भरे तरु-आम ॥६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्री श्रा श्री श्रं श्र. हं सं थ थ. थ ठः ठ. ठ॰ सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं याचितार्थप्रतिपादनशक्तिसहिताय क्लीमहाबीजाक्षरसंहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥६॥

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मंत्र को श्रद्धा सहित जपने से वहुत शीघ्र विद्या आती है ॥६॥

अर्थ—हे जिनेश ! जिस तरह अवोध कोयल वसन्त ऋतु में केवल आम्रमञ्जरी का निमित्त पाकर मधुर ध्वनि करती है, उसी प्रकार अल्पज्ञ और विद्वानों के हास्यपात्र मुझे केवल आपकी भक्ति ही आपकी स्तुति करने के हेतु जवरन वाचाल कर रही है ॥६॥

Though my learning is poor, and I am the butt of ridicule to the learned, yet it is my devotion towards You, which forces me to be vocal. The only cause of the cuckoo's sweet song in the spring-time is indeed the charming mango buds. 6.

[७]

सर्वदुरित संकट क्षुद्रोपद्रव निवारक

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त-लोक - मलिनील - मशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥

स्तोत्रेण नाथ ! विलय क्षणमात्रतो यत्
पापं प्रयाति पठतां भवता नरस्य ।
मुक्तेः सुखं स हि भुनक्ति निवार्य कुष्टं,
पूजां करोमि सततं च ततो जिनस्य ॥७॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप।
पल भर मे भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥

सकललोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रात: रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ॥७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो वीजवुद्धीणं । (मंत्र) ॐ ह्री हं सं श्रा श्री क्रौं क्ली सर्वदुरितसकटक्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री सकलपापफलकुष्टनिवारणाय, क्लीमहावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥७॥

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धिमंत्र भावसहित जपने से किसी प्रकार का विष नही चढता । तथा कंकरी को १०८ वार मंत्रित कर सर्प के सिरपर मारने से सर्प कीलित हो जाता है ॥७॥

अर्थ—हे प्रभो ! जिस तरह सूर्य की किरणों द्वारा रात्रि का समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी तरह आपके स्तवन से प्राणियों का अनेक जन्म में सञ्चित पाप नष्ट हो जाता है ॥७॥

As the black-bee-like darkness of the night, overspreading the universe, is dispelled instantaneously by the rays of the sun, so is the sin of men, accumulated through cycles of births, dispelled by the eulogies offered to you. 7

[८]

सर्वारिष्ट योग निवारक

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद-विन्दुः ॥८॥

ज्ञात्वा मया सुरचिता जिननाथ-पूज्यां,
पूजां विधाय पुरुषः शिवधाम याति।

सम्यक्त्वमुख्य - गुणकाष्टक - धारिसिद्धः,
सिद्धः भवेत्स भविनां भवतापहारी ॥८॥

मैं मति-हीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूं स्तुति अघहान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान॥
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती कैसे आभावान।
दिपते है फिर छिपते है असली मोती मे हे भगवान ॥८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो पादाणुसारिणं।

(मंत्र) ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौ ह्र: अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐह्री लक्ष्मणरामचन्द्रदेव्यै नम स्वाहा।

ॐ ह्री अनेकसंकटसंसारदु:खनिवारणाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥८॥

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित ऋद्धिमंत्र का जाप करने से सर्वप्रकार के अरिष्ट मिट जाते है ॥८॥

अर्थ—हे प्रभो ! जिस तरह कमलिनी के पत्र पर पड़ी हुई पानी की बूंद उस पत्ते के प्रभाव से मोती के समान सुन्दर दिखकर दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करती है, उसी प्रकार मुझ मन्दबुद्धि द्वारा की गई आपकी स्तुति भी आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को प्रसन्न करेगी ॥८॥

Thinking thus O Lord, I, though of little intelligence, begin this eulogy [in praise of you], which will, through Your magnanimity, captivate the minds of the righteous, water drops, indeed, assume the lustre of pearls on lotus leaves. 8.

जलकुसुमसुगन्धै - रक्षतैः दीपधूपैः।
विविध-फलनिवेद्यै-रर्चयामीह देवम् ॥

सुरनरवरसेव्य दोहदानां वरेशं ।
शिवसुखपदधाम प्राणिना प्राणनाथम् ॥
ॐ ह्री अष्टदलकमलाधिपतये श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

•

अथ षोडश दलकमलपूजा

सप्तभयसंसारक अभीप्सितफलदायक

[९]

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

तव गुणावलिगानविधायिनो, भवति दूरतर दुरितास्पदं ।
तव कथापि शिवाढ्यविधायिका कुरु जिनार्चनक शुभदायकं

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष ।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर ।
फेका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो अरिहताणं णमो सभिण्णसोदाराणं ह्रा ह्री ह्रूं फट् स्वाहा ।

(मंत्र) ॐ ह्री श्री क्रौं क्ली ज्वी र र. ह हः नम स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सकलमनोवाछितफलदात्रे क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥ ९ ॥

(विधि) श्रद्धापूर्वक चार कंकरी १०८ बार मंत्र कर चारो दिशाओं में फेंकने से पथ कीलित हो जाता है तथा सब भय भाग जाते हैं।

भावार्थ—हे जिनेश ! आपके निर्दोष स्तवनमें तो अचिन्त्य शक्ति है ही परन्तु आपकी पवित्र कथाका सुनना ही प्राणियों के पापों को नष्ट कर देता है। जैसे सूर्य तो दूर ही रहता है, परन्तु उसकी उज्ज्वल किरणें ही सरोवरों में कमलो को विकसित कर देती हैं ॥ ९ ॥

Let alone Thy eulog, which destroys all blemishes, even the mere mention of Thy name destroys the sins of the world. After all the sum is far away, still his more light makes the lotuses bloom in the tanks. 9.

[१०]

कूकरविषनिवारक

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किम्वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

नहि विभोऽद्भुतमंत्रसमप्रभो, भवति यो भविनां भुवि भक्तिदः ।
जिनवरार्चनतोऽर्चनतार्चितं, फलमिदं भविता कथितं जिनैः ॥

त्रिभुवनतिलक जगपति हे प्रभु ! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य्य ।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नही अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से ।
नहीं करें तो उन्हे लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो सयंबुद्धीणं ।

(मंत्र) जन्मसद्‌व्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादि नोर्याना-क्षान्ताभावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौ ह्रः श्रा श्री श्रूं श्रौं श्र. सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्ण स्वाहा । (!)

ॐ ह्री अर्हज्जिनस्मरणजिनसम्भूताय क्ली महावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ।

(विधि) श्रद्धापूर्वक नमक की ७ डली लेकर प्रत्येक को १०८ वार मंत्रित कर खाने से कुत्ते के विष का असर नही होता ।

भावार्थ—हे भुवनरत्न ! यदि सत्यार्थ गुणों द्वारा आपकी स्तुति करनेवाले मानव आपके ही सदृश हो जांय तो इनमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि संसार में उस स्वामी से लाभ ही क्या ? जो अपने अधीन व्यक्तियों को अपने समान नहीं बना लेवे ॥ १० ॥

O ornament of the world ! O Lord of beings ! No wonder that those, adoring You with (Thy) real qualities, become equal to you What is the use of that (master), who does not make his subordinates equal to himself by (the gifts of) wealth. 10.

[११]

अभीप्सित-आकर्षक

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥

भवति दर्शनमेवमिते सति, भवति यादृश एव सुतोषकः ।
न हि तथा परत क्वचिदेव तत्, सततमेव करोमि तवार्चनम् ॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हे देखकर परम-पवित्र।
तोषित होते कभी नही है, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल क्षीरोदधि का कर जलपान।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्री श्री क्ली श्रा श्री कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा ।

ॐ ह्री सकलतुष्टिपुष्टिकराय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥ ११ ॥

(विधि) श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धिमंत्र जपने से जिसे बुलाने की उत्कण्ठा हो वह आ सकता है। बारह हजार मंत्र जपकर सरसो के तीन घेर करे तो वर्षा होय ॥ ११ ॥

अर्थ—हे लोकोत्तम ! जसे क्षीरसागर के निर्मल और मिष्ट जल का पान करनेवाला मनुष्य अन्य समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा नहीं करता, उसी तरह आपकी वीतरागमुद्रा को निरख कर मनुष्यों के नेत्र अन्य देवों की सरागमुद्रा के खेलने से तृप्त नहीं होते ॥ ११ ॥

Having (once) seen You, fit to be seen with winkless eyes or by Gods, the eyes of man do not find satisfaction elsewhere. Having drunk the moon-white milk of the milky ocean, who desires to drink the saltish water of the sea ? 11.

[१२]

हस्ति-मद-विदारक, वांछित-रूप-प्रदायक

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललामभूत !

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

जिनविभो ! तव रूपमिव क्वचित्,
न भवतीह जने विभवान्विते ।
भवति पापलयं जिनदर्शनात्,
जिन ! सदार्चनता प्रकरोमि ते ॥१२॥

जिन जितने जैसे अणुओ से, निर्मापित प्रभु तेरी देह ।
थे उतने वैसे अणु जग मे, शान्त-राग-मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण - रूप ।
इसीलिए तो आप सरीखा, नही दूसरो का है रूप ॥१२॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो बोहियबुद्धीणं ।

(मंत्र) ॐ आ आ अं अ सर्वराजप्रजामोहिनी सर्वजनवश्य कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री वाञ्छितरूपफलशक्तये क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥ १२ ॥

(विधि) श्रद्धासहित ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० ऋद्धिमंत्र जपना चाहिए । एक पाव तिलतेल को उक्त मत्र से मंत्रित कर हाथी को पिलाने से उसका मद उतर जाता है ॥ १२ ॥

अर्थ—हे लोकशिरोमणे ! आपके शरीर की रचना जिन पुद्गल परमाणुओं से हुई है, वे परमाणु ससार में उतने ही थे । यदि अधिक होते तो आप जैसा रूप और का भी होना चाहिये था, किन्तु वास्तव में पृथिवी पर आपके समान सुन्दर कोई दूसरा नहीं है ॥ १२ ॥

O supreme ornament of all the three worlds ! As ma-
y indeed in this world were the atoms possessed of the
ıstre of non-attachment, that went to the composition
f Your body and that is why no other form like that of
ours exists on this earth. 12.

[१३]

लक्ष्मी-सुख-प्रदायक, स्वशरीररक्षक

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥१३॥

सुरनरोरग-मानसहारकं, सुवदनं शशितुल्यमतं त्वकं ।
जगति नाथ ! जिनस्य तवात्र भो, परियजे विधिनात्र जिनं मुदा॥

कहाँ आपका मुख अतिसुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रक-समान कीट-सा दीन ।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन मे हो करके छवि-छीन ॥१३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो ऋजुमदीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्री श्री हं स. ह्रौं ह्रा ह्री द्रा द्री द्रौं द्रः मोहिनि सर्व-जनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं लक्ष्मीसुखविधायकाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१३॥

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन १००० ऋद्धिमंत्र का जप करने तथा ७ कंकरियो को १०८ मंत्रित कर चारो ओर फेंकने से चोर चोरी नही कर पाते और मार्ग में भय नही रहता ॥१३॥

अर्थ—हे प्रभो ! आपके मुख को चन्द्रमा की उपमा देने वाले विद्वान् गलती करते हैं; क्योंकि आपके मुख की प्रभा कभी फीकी नहीं पड़ती, परन्तु चन्द्रमा की प्रभा दिन में फीकी पड जाती है। तथा चन्द्रमा कलङ्की है, किन्तु आपका मुख कलङ्करहित है ॥१३॥

where is Thy face which attracts the eyes of gods, men, and divine serpents, and which has thoroughly surpassed all the standards of comparison in all the three worlds. That spotted moon-disc which by the day time becomes pale and lustreless like the white, dry leaf, stands no comparison ! 13.

[१४]

आधि-व्याधि नाशक

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

तव गुणान् हृदि धारकमानवो,
भ्रमति निर्भयतो भुवि देववत् ।
शशिसमै र्जलचन्दनमुख्यकै,
परियजामि नतो जिनपादुकाम् ॥१४॥

तव गुण पूर्ण-शशाङ्क कान्तिमय, कला-कलापो से बढके ।
तीन लोक मे व्याप रहे है, जो कि स्वच्छता मे चढके ॥
विचरे चाहे जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हे रोकने का अधिकार ॥१४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो विउलमदीण ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवत्यै गुणवत्यै महामानस्यै स्वाहा ।

ॐ ह्रीं भूतप्रेतादिभयनिवारणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१४॥

(विधि) श्रद्धापूर्वक ७ कंकरियों को २१ बार मंत्रित कर चारो ओर फेंकने से आधि-व्याधि शत्रु आदि का भय मिट जाता है और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अर्थ—हे गुणाकर ! जैसे किसी राजाधिराज के आश्रित व्यक्ति को जहां तहां इच्छानुसार घूमते रहते कोई रोक नहीं सकता उसी प्रकार आश्रित कीर्ति आदिक गुणों को त्रिलोक में कोई नहीं रोक सकता अर्थात् आपके गुण लोकत्रय में व्याप्त हो रहे हैं ॥१४॥

Thy virtues, which are bright like the collection of digits of full-moon, bestride the three worlds. Who can resist them while moving at will, having taken resort to that supreme Lord Who is the sole overlord of all the three worlds. 14.

[१५]

सन्मान-सौभाग्य-संवर्द्धक

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
नींतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

अमरनारिकटाक्षशरासनैर्न चलितो वृषभः स्थिरमेरुवत् ।
शिवपुरे उषित च जिनै नुंतं, परियजे स्तवनैश्च जलादिभि ॥

मद की छकी अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार ।
कर न सकी आश्चर्य कौन सा, रह जाती है मन को मार ॥

गिरि गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिखर।
हिल सकता है रच-मात्र भो, पाकर झझावात प्रखर ॥१५॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवती गुणवती-सुसीमा पृथ्वी-वज्रशृङ्खला-मानसी-महामानसीदेवीभ्य' स्वाहा ।

ॐ ह्रीं मेरुवन्मनोबलकरणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१५॥

(विधि) श्रद्धापूर्वक ५४ दिन १००० जाप करे । २१ बार तैल मंत्रित कर मुख पर लगाने से सभा में सम्मान बढता है ॥१५॥

अर्थ--हे मनाविजयिन् ! प्रलय की पवन से यद्यपि अनेक पर्वत कम्पित हो जाते हैं परन्तु सुमेरुपर्वत लेशमात्र भी चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार देवाङ्गनाओं ने यद्यपि अनेक महान् देवों का चित्त चलायमान कर दिया, परन्तु आपका गम्भीर चित्त किसी के द्वारा लेशमात्र भी चलायमान नहीं किया जा सका ॥१५॥

No wonder that Your mind was not in the least pert-urbed even by the celestial damsels. Is the peak of Mand-aramountain ever shaken by the mountain-shaking win-ds of Doomsday ? 15.

[१६]

सर्व विजयदायक

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

जगति दीपक इव जिन ! देवराट्, प्रकटित सकल भुवनत्रय
पद-सरोज-युगं तु समर्चये, विमलनीरमुखाष्टविधैस्तव ॥

धूम न बत्ती तैल बिना हो, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग-विख्यात ॥१६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं।

(मंत्र) ॐ णमो मंगला-सुसीमा-नाम-देवीभ्या सर्वसमीहितार्थ-वज्र-शृङ्खला कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यलोकवशङ्कराय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम्।

(विधि) ९ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित १००० ऋद्धि-मंत्र जपने से राजदरबार में प्रतिवादी की हार होती है और शत्रु का भय नही रहता। पेसी के दिन १०८ वार मंत्र पढकर स्वयं को वा दूसरो को अमृत (दुग्ध) का तिलक करे ॥१६॥

अर्थ—हे विश्वप्रकाशक आप समस्त ससार को प्रकाशित करने वाले अनोखे दीपक हैं। क्योंकि अन्य दीपकों की बत्ती से धुआँ निकलता है, परन्तु आपका वर्ति (मार्ग) निर्धूम (पापरहित) है। अन्य दीपक तैल की सहायता से प्रकाश करते हैं, परन्तु आप बिना किसी की सहायता से ही प्रकाश (ज्ञान) फैलाते हैं। अन्य दीपक जरा भी हवा की झोंक से बुझ जाते हैं, परन्तु आप प्रलयकाल की हवा से भी विकार को प्राप्त नहीं होते। तथा अन्य दीपक थोड़े से ही स्थान को प्रकाशित करते हैं, परन्तु आप समस्त लोक को प्रकाशित करते हैं ॥१६॥

Thou art, O Lord! an unparalled lamp—as it were, the very light of the universe—which, though devoid of smoke, wick and oil, illumines all the three worlds and is invulnerable even to the mountain-shaking winds. 16.

[१७]

सर्वरोग प्रतिरोधक

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर — निरुद्ध – महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥

शुभरवीव जिन जिननायक,
दुरितरात्रिघनान्ध — तमोपह ।
स्वजनपद्मविकास — विधायक,
स्तवनपूजनकैश्च यजामि तम् ॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल ।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट ।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं णमो अट्ठाङ्गमहानिमित्तकुसलाण ।

(मंत्र) ॐ णमो णमिऊण अट्टेमट्टे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रपीडा जठरपीडा भंजय-भजय, सर्वपीडा निवारय-निवारय, सर्वरोग-निवारण कुरु-कुरु स्वाहा।

ॐ ह्रीं पापान्धकारनिवारणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१७॥

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक १००० जाप जपना चाहिये । अछूता पानी २१ बार मंत्रित कर पिलाने से शारीरिक सभी रोग दूर हो जाते है ॥१७॥

अर्थ—ये मुनिनाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी अधिक है। क्योकि सूर्य सन्ध्या समय अस्त हो जाता है, परन्तु आप सदा प्रकाशित

रहते हैं। सूर्य को राहु ग्रस लेता है, परन्तु आज तक वह आपका स्पर्श नहीं कर सका। सूर्य दिन में क्रम क्रम से केवल एक द्वीप के अर्ध-भाग को ही प्रकाशित करता है, परन्तु आप समस्त लोक को एक साथ प्रकाशित करते हैं। और सूर्य के प्रकाश को मेघ ढक देते हैं, परन्तु आपके प्रकाश (ज्ञान) को कोई भी नहीं ढक सकता ॥१७॥

O Great Sage, Thou knowest on sitting, nor art Thou eclipsed by Rahu. Thou dost illumine suddenly all the worlds at one and the same time. The water-carrying clouds too can never bedim Thy great glory. Hence in respect of effulgence Thou art greater than the sun in this world. 17.

[१८]

शत्रुसैन्य स्तम्भक

नित्योदयं दलित – मोह – महान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प–कांति,
विद्योतयत्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

जिनशशी प्रकरोति विभासकं,
सकलभव्य — सुपद्मवनं घनं ।
निशिदिनं तिमिरप्रतिघातको,
वरमहं सुयजामि जलादिकैः ॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न वादल से दवता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥

विश्व-प्रकाशक मुखसरोज तव, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप।
है अपूर्व जग का शशि-मण्डल, जगत शिरोमणि शिव का भूप॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणड्ढिपत्ताणं।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय, स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

ॐह्रीं चन्द्रवत्सर्वलोकोद्योतनकराय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१८॥

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक १००० जाप जपना चाहिये। १०८ वार ऋद्धि-मंत्र जपने से शत्रुमुख स्तम्भित हो जाता है।

अर्थ—हे चन्द्रवदन! आपका मुखकमल एक विलक्षण चन्द्रमा है। क्योंकि प्रसिद्ध चन्द्र तो रात्रि में ही उदित होता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र सदा उदित रहता है। चन्द्रमा साधारण अन्धकार का ही नाश करता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र मोहरूपी महान् अन्धकार को नष्ट कर देता है। चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है और बादल छिपा देते हैं; परन्तु आपके मुखचन्द्र को न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं। चन्द्र की कान्ति कृष्णपक्ष में घट जाती है, परन्तु आपके मुखचन्द्र की कान्ति सदा सदृश रहती है। तथा चन्द्रमा रात्रि में क्रम क्रम से केवल अर्धद्वीप को ही प्रकाशित करता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र समस्त लोक को एक साथ प्रकाशित करता है ॥१८॥

Thy lotus-like countenance,—which rises enternally, destorys to the great darkness of ignorance, is accessible neither the mouth of Rahu nor to the clouds, possesses great of luminosity,—is the universe-illuminating peerle-ss moon. 18.

[१९]

उच्चाटनादि रोधक

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमःसु नाथ ?
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरै र्जलभारनम्रैः ॥१९॥

जिनमुखोद्भवकान्ति - विकाशितः,
निखिललोज इतीह दिवाकरः ।
किमथवा सुखदः प्रतिमानवं,
भवतु सः वृषभः शुभसेवया ॥

नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश ।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्र-बिम्ब का विफल प्रयास ॥
धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुये हों अति अभिराम ।
शोर मचाते जल को लादे, हुये घनो से तब क्या काम ? ॥१९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् नम. स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सकलकालुष्यदोषनिवारणाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृपभजिनाय अर्घ्यम् ॥१९॥

(विधि) ऋद्धि-मंत्र को श्रद्धासहित १०८ बार जपने से अपने पर प्रयोग किये गये दूसरे के मंत्र, जादू, टोना, टोटका, मूठ, उच्चाटन आदि का भय नही रहता ॥१९॥

अर्थ—हे त्रिलोकीनाथ ! जिस प्रकार अनाज के पक जाने पर जलका बरसना व्यर्थ है; उस जलसे कीचड़ होनेके सिवाय और कोई लाभ नहीं

होता, उसीप्रकार आपके मुखचन्द्रके द्वारा जहां अन्धकार नष्ट होचुका है; वहां दिनमें सूर्यसे और रात्रिमें चन्द्रसे कोई लाभ नहीं ॥१९॥

When Thy lotus-like face, O Lord, has destroyed the darkness, what's the use of the sun by the day and moon by the night ? What's the use of clouds heavy with the weight of water, after the ripening of the paddy-fields in the world 19:

[२०]

सन्तान-सम्पत्ति-सौभाग्य प्रसाधक

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

त्वयि प्रभो ! प्रतिभाति यथा शुचि,
न हि तथा हरिमुख्यसुरादिषु ।
वसतु स प्रभुरादिजिनेश्वरो,
मम मन सरसीव सु-हसवत् ॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान ।
हरिहरादि देवो मे वैसा, कभी नही हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्त्व देखा जाता ।
क्या वह किरणाकुलित कांच मे, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो चारणाण ।

(मंत्र) ॐ श्रा श्री श्रू श्र. शत्रुभयनिवारणाय ठः ठः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानप्रकाशितलोकालोकस्वरूपाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२०॥

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र को १०८ बार जपने से सन्तान, सम्पत्ति, सौभाग्य, बुद्धि और विजय की प्राप्ति होती है ॥२०॥

अर्थ—हे सर्वज्ञ ! निज और पर का प्रकाशक तथा निर्मल जैसा ज्ञान आप में सुशोभित होता है, वैसा ज्ञान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी अन्य देव में नहीं होता। क्योंकि तेज की शोभा महामणि में ही होती है; न कि काच के टुकड़े में ॥२०॥

Knowledge abiding in the Lords like Hari and Hara does not shine so brilliantly as it does in You, Effulgence, in a piece of glass, though filled with rays, the rays never attains that glory, which it does in sparkling gems 20

[२१]

सर्वसौख्य सौभाग्य साधक

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

तव शुभं वरदर्शनमञ्जसा, हरति पापसमूहकमेव तत्।
भवतु ते चरणाब्जयुगं प्रभो, स्थिरकर मम चित्तशुचेः करम्

हरिहरादि देवों का ही मै, मानूं उत्तम अवलोकन ॥
क्योंकी उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हे देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ।
जन्म जन्म में भी न लुभा पा-ते कोई यह मम, अमिताभ ।२१।

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो पण्णसमणाणं ।

(मंत्र) ॐ नम श्री मणिभद्र , जय., विजय , अपराजितश्च, सर्व-सौभाग्यं सर्वसौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री सर्वदोषहरशुभदर्शनाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२१॥

(विधि) श्रद्धासहित मंत्र को ४२ दिन तक १०८ बार जपने से सब अपने वशवर्ती होते है और सुख सौभाग्य बढता है ॥२१॥

अर्थ—हे लोकोत्तम ! दूसरे देवों के देखने से तो आप में संतोष होता है यह लाभ है, परन्तु आपके देखने से अन्य किसी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है । अथवा हरिहरादिक देवों का देखना अच्छा है, क्योंकि वे रागी द्वेषी हैं; उनके दर्शन से चित्त सन्तुष्ट नहीं होता तब आपके दर्शन को लालायित होता है, क्योंकि आप वीतराग हैं। आपके दर्शन से चित्त इतना सन्तुष्ट होता है कि मृत्यु के बाद भी वह किसी दूसरे देव का दर्शन नहीं करना चाहता । वहां व्याजोक्ति अलङ्कार है ॥२१॥

Assuredly great I feel, is the sight of Hari, Hara and other gods, but seeing them the heart finds satisfaction only in you. What happens on seeing You on Earth No-ne else, even through all the future lives, shall be able to attract my mind 21

[२२]

भूत पिशाचादि बाधा निरोधक

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
　　नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
　　प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

सुवनिता जनयन्ति सुतान् बहून्, तव समो नहि नाथ ! महीतले
तनुवर सुखदं सुरभासुरं, मनसि तिष्ठत मे स्मरणं तु ने ॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को, जनती रहती सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ?
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरें नहो कोई खाली ।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं ।

(मंत्र) ॐ नमो वीरेहि ज़ृंभय-ज़ृंभय मोहय-मोहय स्तम्भय-स्तम्भय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा । (!)

ॐ ह्रीं अद्भुतगुणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम्

(विधि) श्रद्धासहित हल्दी की गाठ को १०८ बार मंत्रित कर चबाने से डाकिनी भूत पिशाच चुड़ैल आदि भाग जाते है ॥२२॥

अर्थ—हे महीतिलक ! जिस प्रकार सूर्य को पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है; अन्य दिशाएँ नहीं, उसी प्रकार एक आपकी माता ही ऐसी हैं जो आप जैसे पुत्ररत्न को पैदा कर सकीं, अन्य किसी माता को ऐसे पुत्र-रत्न को पैदा करने का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हुआ ॥२२॥

Though all the directions do possess stars, yet it is only the eastern direction which gives birth to the thousandrayed (sun), whose pencils of rays shine forth brilliantly. So do hundreds of mothers give birth to hundreds of sons, but there is no other mother who gave birth to a son like You. 22.

[२३]

प्रेतबाधा निवारक

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस—
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥

पदयुगस्य सुसस्मरणान्नरः
शिवपद लभतेऽति-सुखप्रदं ।
परियजे वर—पादयुगं मुदा,
जिन ! ददातु सुवाञ्छितमत्र मे ॥

तुम को परम पुरुष मुनि माने, विमल वर्ण रवि तमहारी ।
तुम्हे प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हे छोडकर अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है ।
किन्तु विपर्यय मार्ग बता कर, भव-भव मे भटकाता है ॥२३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रा अर्हं णमो आसीविसाण ।

(मत्र) ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थमोक्षसौख्यं च कुरु-कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री मनोवाछितफलदायकाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२३॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मत्र को १०८ बार जपकर अपने शरीर की रक्षा करे । पश्चात् इसी मत्र से झाडने पर प्रेतबाधा दूर होती है ।

अर्थ—हे योगीन्द्र । मुनिजन आपको परमपुरुष, कर्ममलरहित होने से निर्मल, मोहान्धकार का नाशक होने से सूर्य के समान तेजस्वी,

आपकी प्राप्ति से मृत्यु न होने के कारण मृत्युञ्जय तथा आपके अतिरिक्त कोई दूसरा निरुपद्रव मोक्ष का मार्ग नहीं होने से आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं ॥२३॥

The great sages consider You to be the Supreme Being, Who possesses the effulgence of the sun, is free from blemishes, and is beyond darkness Having perfectly realized You, men even conquer death. O Sage of sages ! there is no other an auspicious path (except You) leading to Supreme Blessedness. 23.

[२४]

शिरोरोग शामक

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य - मसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माण - मीश्वर - मनन्त-मनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदित - योग - मनेक - मेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

त्वमिह देवहरि जिननायक',
प्रभुवर' यतिराज-मुनीश्वरः ।
त्वदभिधानमहो जगता प्रभो !
प्रतिक्षणं भवतु प्रति मानसम् ॥

तुम्हे आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश ।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश ।
इत्यादिक नामो कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं ।

(मंत्र) स्थावरजंगमकायकृतं सकलविषं यद्भक्ते. अमृतायते दृष्टि-विषास्ते मुनय वड्ढमाणस्वामी च सर्वहितं कुरुत-कुरुत स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सहस्रनामाधीश्वराय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२४॥

(विधि) राख मंत्रित कर शिर में लगाने से शिरपीडा दूर होती है ॥२४॥

अर्थ—हे गुणार्णव ! आपकी आत्मा का कभी नाश नहीं होने से आप अव्यय (अविनाशी), ज्ञान के लोकत्रय व्यापी होने से अथवा कर्मनाश में समर्थ होने से स्वरूप से अचिन्त्य, संख्यातीत या अद्भुत गुणयुक्त होने से असंख्य, युगादिजन्मा या वर्तमान चौबीसी के प्रथम होने से आद्य (प्रथम), कर्मरहित या निवृत्तिरूप होने से ब्रह्मा, कृतकृत्य होने से ईश्वर, अन्तरहित होने से अनन्त, कामनाश के लिए केतुग्रह के उदय समान होने से अनंगकेतु, मुनियों के स्वामी होने से योगीश्वर, रत्नत्रय-रूप योग के ज्ञाता होने से विदितयोग, गुणों और पर्यायों की अपेक्षा अनेक, तीर्थङ्करीय भेद की अपेक्षा एक, केवलज्ञानी होने से ज्ञानस्वरूप तथा कर्ममल रहित होने से 'अमल' कहे जाते हैं । अर्थात् ऋषिगण पृथक्-पृथक् गुणों की अपेक्षा आपको अव्यय आदि कहकर स्तुति करते हैं ॥२४॥

The righteous consider You to be immutable omnipotent, incomprehensible unumbered the first, Brahma, the supreme Lord Siva, endless the enemy of Ananga (Cupid), lord of yogis, the knower of yoga, many, one, of the nature of knowledge, and stainless 24.

हृत्वा कर्मरिपून् कटुतरान्, प्राप्तं परं केवलं।
ज्ञानं येन जिनेन मोक्षफलदं, प्राप्तं द्रुतं धर्मजम् ॥
अर्घेणात्र सुपूजयामि जिनपं, श्री सोमसेनस्त्वहं ।
मुक्तिश्रीष्वभिलाषया जिन ! विभो ! देहि प्रभो ! वाञ्छितम् ॥

ॐ ह्रीं हृदयस्थितषोडशदलकमलाधिपतये श्री वृषभदेवायार्घ्यम् ।

●

अथ चतुर्विंशतिदलकमलपूजा

[२५]

दृष्टिदोषनिरोधक

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय - शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधे र्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

बुद्धः प्रबुद्धो वरबुद्धराजो
मुक्ते विधानाद्भविनां विधाता।
सौख्यप्रयोगात् जिन ! शङ्करोऽसि,
सर्वेषु मर्त्येषु सदोत्तमस्त्वम् ॥२५॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसी लिए कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख—संवर्धक, अत: तुम्ही शङ्कर हो शुद्ध ॥
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक, अतः विधाता कहे गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

. (ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो उग्गतवाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौ ह्र अ सि आ उ सा झ्रा झ्रौं स्वाहा । ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं, सर्वसौख्यं च कुरु-कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री षड्दर्शनपारङ्गताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२५॥

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र के जपने से नजर उतरती है । और अग्नि का असर आराधक पर नही होता ॥२५॥

अर्थ—हे पुरुषोत्तम ! विश्व की चराचर वस्तुओं को एक साथ एक समय में जान लेने वाला आपका बुद्धिबोध (केवलज्ञान) देव-देवेन्द्रों द्वारा पूजत होने से आप बुद्ध कहे जाते हैं । सब प्राणियों को बिना भेद-भाव सुख-शान्ति का पथ प्रदर्शन कर उन्हें आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर करते हैं, अतः आपको शङ्कर कहते हैं । आपने कर्मबन्धन-युक्त जीवों को संसार से छुटकारा पाने का रास्ता बता कर प्रतिबोधित किया है, अत आपको ब्रह्मा कहते हैं । अवनीतल पर आपके समान उपरोक्त गुणों वाला कोई दूसरा पुरुष पैदा नहीं हुआ है । अत आपको पुरुषोत्तम भी कहते हैं ॥ २५ ॥

As Thou possessest that knowledge which is adored by gods, Thou indeed art Buddha, as Thou dost good to all the three worlds, Thou art Shankar, as Thou prescribest the process leading to the path of Salvation, Thou art Vidhata, and Thou, O Wise Lord, doubtless art Purushottama 25.

[२६]

अर्धशिर पीडा विनाशक

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

लोकार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्यं,
नमोऽस्तु तुभ्यं जिनभूषणाय ।
त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं,
नमोऽस्तु तुभ्य भवतारणाय ॥२६॥

तीनलोक के दुःखहरण कर–ने वाले हे तुम्हे नमन ।
भूमण्डल के निर्मल-भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन ।
भव-सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हे नमन ॥२६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्री श्री क्ली ह्रूं ह्रूं परजनशान्तिव्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं नानादुःखविलीनाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२६॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा तेल को मंत्रित कर सिर पर लगाने से आधाशीशी (अर्द्धसिर की पीड़ा दूर होती है ॥२६॥

अर्थ—हे नमस्करणीय देव ! हम आपकी भक्ति करते हैं, विनय करते हैं, स्तुति करते हैं, नमस्कार करते हैं, क्यों ? इसलिए कि आप

ही सब जीवोंके समस्त दुःखों को दूर कर उन्हें राहत पहुँचाते हैं। आप ही अवनीतल के सर्वोत्तम अलङ्कार है। आप ही तीनों लोकों के एकमात्र उपास्य उत्कृष्ट ईश्वर है। आप ही संसार-समुद्र को सुखा कर मानवों को अजर-अमर पद देने वाले सत्यदेव हैं। अतः हम, बार-बार प्रणमन करते है। पुनश्च आप पूजक को जगत्पूज्य बना देते हैं, अत आप अति नमस्करणीय हैं ॥ २६ ॥

O God Jinendra ! O Lord ! you are the destroyer of the miseries of all the three worlds, therefore I bow down to you. I offer my salutes to you who is like a pure matchless ornament, you are the Lord of all the three worlds you can dry up the ocean of the world. 26.

[२७]

शत्रून्मूलक

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषै-रुपात्त - विविधाश्रय - जात - गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

कमद्भुत दोषसमुच्चयेन,—
कृत्वाऽत्र गर्वं जिन ! संश्रितोऽसि।
स्वप्नेऽपि न त्वं गुणराशिधामा,
दोषाश्रितो मर्त्यसमाश्रयेण ॥२७॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमे यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हो, अन्य आश्रय उन्हे जिनेश॥
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्नमात्र मे हे गुणकोष ॥२७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधय साधय शत्रूनुन्मूलयोन्मूलय स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सकलदोषनिर्मुक्ताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की उपासना से आराधक को शत्रु भी हानि नहीं पहुँचा सकता ।

अर्थ—हे गुणनिधान ! संसार के समस्त गुणों ने आप में सहसा इस तरह निवास कर लिया है कि कुछ भी स्थान शेष नहीं रहा और दोषों ने यह सोचकर अभिमान से आपकी ओर देखा भी नहीं; कि जब संसार के बहुत से देवों ने हमें अपना आश्रय दे रखा है, तब हमें एक जिनदेव की क्या परवाह है, यदि उनमें हमें स्थान नहीं मिला तो न सही । सारांश यह है कि आप में केवल गुणों का ही निधान है, दोषों का नामनिशान भी नहीं ॥ २७ ॥

No wonder that, atter finding space nowhere, You have, O Great Sage !, been rosorted to by all the excell-enes; and in dreams even Thou art never looked at by blemishes, which, having obtained many resorts, have become inflated with pride. 27.

[२८]

सर्व मनोरथ प्रपूरक

उच्चैर - शोकतरु—संश्रित - मुन्मयूख—
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त - तमो - वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

अशोकवृक्षा· सुकृता विचित्राः,
छायाघना नाथ सुपुण्ययोगात्।
तवोपरि प्रीतजनेषु नित्यं,
सुखप्रदा· स्यु. परमार्थशोभाः ॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला ॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप ॥२८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते जय-विजय जृंभय मोहय मोहय सर्वसिद्धि, सम्पत्ति, सौख्यं च कुरु कुरु स्वाहा।

ॐ ह्रीं अशोकतरुविराजमानाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

(विधि) प्रतिदिन श्रद्धासहित १०८ वार ऋद्धि-मंत्र जपने से सभी अच्छे कार्य सिद्ध होते है और व्यापार मे भी लाभ होता है ॥२८॥

अर्थ – हे अतिशयरूप ! ऊँचे और हरे "अशोकवृक्ष" के नीचे आपका स्वर्णमय उज्ज्वलरूप ऐसा मालूम होता है जैसा काले काले मेघ के समीपवर्ती पीतवर्ण सूर्य का मण्डल। यह अशोकवृक्ष प्रातिहार्य का वर्णन है ॥ २८ ॥

Thy shining form, the rays of which go upwards, and which is really very much lustrous and dispels the expanse of darkness, looks excellently beutiful under the Ashoka-tree the orb of the sun by the side of clouds. 28.

[२९]

नेत्रपीड़ा विनाशक

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहासनं प्राणिहितङ्करं यत्, सुशोभते हेममयं विचित्रं ।
सहस्रपत्रोपरिकर्विकायाम्, विराजते जैनतनुः सुशोभा ॥
मणि-मुक्ता किरणों से चित्रित अद्भुत शोभित सिंहासन ।
कान्तिमान् कंचन-सा दिखता, जिसपर तव कमनीय वदन ॥
उदयाचल के तुङ्ग शिखर से, मानो सहस्ररश्मि वाला ।
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं णमो णमिऊण पासं विसहर फुलिंगमंतो विसहर नाम रकारमतो सर्वसिद्धिमीहे इह समरंताणमण्णे जागई कप्पदुमच्चं सर्वसिद्धि ॐ नमः स्वाहा । (!)

ॐ ह्रीं मणिमुक्ताखचितसिंहासनप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीमहाबीजाक्षर सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन १०८ बार मंत्र जपने से हर प्रकार की नेत्रपीडा दूर होती है ॥२९॥

अर्थ—हे रत्नजटित सिंहासनस्थ देव ! तपाये हुए सोने की चमकती आभा के समान आपका कांतिमान् दिव्य सुन्दर मनोहारी शरीर, झिलमिलाती रत्न-मणियों की किरण-पंक्ति से सुशोभित, आश्चर्यजनक सिंहा-

सन पर ऐसा ही शोभा देता है, जैसा कि उदयाचल पर्वत के उन्नत शिखर पर, सहस्र-प्रखर-किरणसमूह का वितान (मंडप) तानता हुआ सुन्दर सूर्यबिम्ब। अर्थात् जैसे उदयाचल पर्वत के शिखर पर सूर्य शोभा पाता है वैसे ही रत्नजटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान होता है। (द्वितीय प्रातिहार्य वर्णन) ।।२९।।

Thy gold-lustred body shines verily on the throne like the disc of the sun on the summit which is varigated with the mass of rays of gems, of the high Rising mountain, the rays of which (disc), spreading in the firmament like a creeper, look (exceedingly) graceful. 29.

[३०]

शत्रु स्तम्भक

कुन्दावदात - चलचामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारिधार—
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।।३०।।

गङ्गातरङ्गाभविराजमानं, विभ्राजते चामरचारुयुग्मं ।
सुदर्शनाद्रौ गतनिर्झरं वा तनोति देगेऽत्र-महाविकासं ।।

ढुरते सुंदर चंवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान।।
कनकाचल के तुङ्ग शृङ्ग से, झर झर झरता है निर्झर।
चन्द्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्ठे क्षुद्रान् स्तम्भय स्तभय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं चतु.षष्टिचामरप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

(विधि) श्रद्धापूर्वक ऋद्धि-मंत्र की आराधना करने से शत्रु का शौर्य नष्ट होता है ॥३०॥

अर्थ—हे चामराधिपते ! जिस पर देवों द्वारा सफेद चँवर ढोरे जा रहे हैं ऐसा आपका सुवर्णमय शरीर ऐसा सुहावना मालूम होता है; जैसा झरने के सफेद जल से शोभित सुमेरु पर्वत का तट । यह (चामर प्रातिहार्य) का वर्णन है ॥ ३० ॥

Thy gold-lustred body, to which grace has been imparted by the waving chawries which is as white as the Kunda-flower, shines like the high golden baow of Sumeru-mountain, on which do fall the streams of rivers which are bright with (like) the rising moon. 30.

[३१]

राज्य सम्मानदायक

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

त्रैलोक्यराज्यं कथितं प्रमाणं, क्षत्रत्रयं शक्रसमानकान्ति ।
मुक्ताफलैः संयुतकं सुशोभं, विराजते नाथ ! तवोपरिष्टात् ॥

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियो से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय।
दीप्तिमान् शोभित होते है, सिर पर छत्रत्रय भवदीय॥
ऊपर रह कर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे है प्रखर-प्रताप।
मानों वे घोषित करते है त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं नमो घोरगुणपरक्कमाणं।

(मंत्र) ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहर विसणिर्णासिणं मंगलकल्लाणावासं ॐ ह्री नम स्वाहा।

ॐ ह्री क्षत्रत्रयप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृपभजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र को जपने से राज्य-मान्यता होती है और हर जगह सम्मान प्राप्त होता है ॥३१॥

अर्थ—हे छत्रत्रयाधिपते! आपके शिर पर सुशोभित, चन्द्र के समान रमणीय, सूर्य की किरणों के सन्ताप का रोधक और रत्नों के जड़ाव से सुशोभित "छत्रत्रय" आपके तीनों लोकों के स्वामीपन को प्रकट करता है। यह छत्रत्रय प्रातिहार्य है ॥ ३१ ॥

The three umbrellas charming like the moon, which are held high above Thee, and the beauty of which has been enhanced by the net-work of pearls and which obstructs the heat of the sun's rays, looks very beautiful, proclaiming, as it were. Thy supreme lordship over all the three worlds. 31.

[३२]

संग्रहणी-संहारक

गम्भीरतार - रवपूरित - दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसङ्गम - भूतिदक्षः।

सद्धर्मराजजय - घोषण - घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

वादित्रनादो ध्वनतीह लोके,
घनाघनध्वान - समप्रसिद्धः ।
आज्ञां त्रिलोके तव विस्तराप्तां,
पूज्यां करोम्यत्र जिनेश्वरस्य ॥

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओ में गुन्जन ।
करने वाली तीन लोक के जन जन का शुभ-सम्मेलन ॥
पीट रही है डंका—"हो सत् धर्म"—राज की ही जय-जय ।
इस प्रकार बज रही गगन मे, भेरी तव यश की अक्षय ॥३२॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरबंभचारिणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्वदोषनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्याज्ञाविधायिने क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा कुवारी कन्या के हाथ से काते गये सूत को मन्त्रित कर गले में बाधने से संग्रहणी तथा उदर की भयानक पीडा दूर होती है ॥३२॥

अर्थ—हे दुन्दुभिपते ! अपने गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं का व्यापक, त्रैलोक्य के प्राणियों को शुभसमागम की विभूति प्राप्त कराने में दक्ष और जैनधर्म के समीचीन स्वामी जिनदेव का यशोगान करने वाला "दुन्दुभि" बाजा आपका सुयश प्रगट कर रहा है। यह (दुन्दुभिप्रातिहार्य) का वर्णन है ॥३२॥

There sounds in the sky the celectial daum, which fills the directions with its deep and loud note, and which is capable of bestowing glory and prosperity on all the beings of the three worlds, and which proclaims the victory-sound of the lord of supreme righteousness, proclaiming Thy fame. 32

[३३]

सर्व ज्वरसंहारक

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात–
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभ - मन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

मन्दार – कल्पद्रुम–पारिजात–चम्पाब्ज–सन्तानक – पुष्पवृष्टिः ।
मरुत्प्रयाता जलबिन्दुयुक्ता, यस्य प्रभावाच्च तमर्चयामि ॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एव मदार।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि कर – ते हैं समुदित देव उदार॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी धीमी मन्द पवन।
पंक्ति बांध कर बिखर रहे हो, मानो तेरे दिव्य-वचन ॥३३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्री क्लीं ब्लूँ ध्यानसिद्धि-परमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं समस्तजातिपुष्पवृष्टिप्रातिहार्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३३॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा कच्चे धागे को मन्त्रित

कर हाथ में बाधने से इकतरा, तिजारी, तापज्वर आदि सब रोग दूर होते हैं ॥३३॥

अर्थ—हे कुसुमवर्षाधिपते ! आकाश से कल्पवृक्षों के फूलों की सुगन्धित जल और मन्द मन्द हवा के साथ जो ऊर्ध्वमुखी और देवकृत वर्षा होती है वह आपकी मनोहर वचनावली के समान शोभायमान होती है। (यह पुष्पवृष्टिप्रातिहार्य) का वर्णन है ॥३३॥

Like Thy divine utterances falls from the sky the shower of celestial flowers such as the Mandara, Nameru, Parijata and Santanaka accompanied by gentle breeze that is made charming with scented water drops. 33.

[३४]

गर्भ संरक्षक

शुम्भत्प्रभा - वलय भूरि-विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या—
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ।३४।

भाममण्डलं सूर्यसहस्रतुल्यं,
चक्षुर्मनोऽह्लादकर नराणाम् ।
सम्बाधिताज्ञान — तमोवितानं,
तत्संयुतं देव ! सुपूजयामि ॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ॥
कोटिसूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नही कुछ भी आताप।
जिनके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्री श्री क्ली ऐं ह्रौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा ।

ॐ ह्री कोटिभास्करप्रभामडितभामण्डलप्रातिहार्याय क्लीमहा
बीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३४॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र कच्चे धागे से मंत्रित कर कमर में बाँधने से असनय मे गर्भ का पतन नही होता ॥३४॥

अर्थ—हे भामण्डलाधिपते ! आपके भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटिसूर्य के समान तेजोयुक्त है तथापि सन्ताप करने वाली नहीं है। चन्द्र के समान सुन्दर होने पर भी कान्ति से रात्रि को जीतती है—अर्थात् रात्रि का अभाव करती है। यह "भामण्डलप्रातिहार्य" का वर्णन है ॥३४॥

Effulgence, surpasses lustre or all the luminaries in the world, and though it (Thine halo) is made up of the radiance of many suns rising simultaneously, yet it outshines the night dacorated with the gentle lustre of the moon. 34

[३५]

ईति-भीति-निवारक

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्त्व - कथनैक - पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनि र्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

दिव्यध्वनि योजनमात्रशब्द',
गम्भीरमेघोद्भव — गर्जनाकः ।

सर्वप्रभाषात्मक - धीरनादः,
यः सतुतः देव ! तवास्यभूतः ॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन ।
करा रहे हैं 'सत्य-धर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार ।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो जयविजयापराजितमहालक्ष्मीः अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् स्वधा स्वाहा ।

ॐ ह्री जलधरपटलगर्जितसर्वभाषात्मकयोजनप्रमाणदिव्यध्वनि
प्रातिहार्याय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥ ९ ॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धिमत्र की आराधना से चोरी, मारी, मृगी, दुर्भिक्ष, राजभय आदि नष्ट हो जाते है ॥३५॥

अर्थ—हे दिव्यध्वनिपते ! आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाती है, सब जीवों को धर्मतत्त्व (हित) का उपदेश देती है। और समस्त श्रोताओं की भाषाओं में बदल जाती है। अर्थात् जो प्राणी जिस भाषा का जानकार होता है, आपकी दिव्यध्वनि उसके कान के पास पहुँचकर उसी भाषारूप हो जाती है। (यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है) ॥३५॥

Thy divine voice, which is sought by those who wish to tread the path of emancipation leading to Heaven and Salvation and which alone can expound the truth of the supreme religion, is endowed with those natural qualities which tansform it (Divya-dhwani) into all the languages capable of clear meaning. 35.

[३६]

लक्ष्मीदायक

उन्निद्रहेमनवपङ्कज - पुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

विहारकाले रचयन्ति देवा., पद्मानि पादं प्रति सप्त सप्त ।
सम्प्राप्य पुण्य शिवशं व्रजन्ति, तव प्रभावेन करोमि पूजाम् ॥

जगमगात नख जिसमे शोभे, जैसे नभमे चन्द्रकिरण ।
विकसित नूतन सरसीरुहमम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ॥
रखते जहाँ वही रचते हैं, स्वर्णकमल, सुरदिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उससे अभिराम ॥३६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ।

(मन्त्र) ॐ ह्री श्री कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्मसंत्रान् आकर्षय, आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष, परमत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहितं च कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्री पादन्यासे पद्मश्रीयुक्ताय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३६॥

(विधि) श्रद्धासहित १२०० ऋद्धिमन्त्र का जाप करने से सम्पत्ति का लाभ होता है ॥३६॥

अर्थ—हे पूज्यपाद ! धर्मोपदेश देने के लिये जब आप आर्य-खण्ड में विहार करते हैं, तब देवगण आपके चरणों के नीचे कमलों की रचना करते हैं ॥३६॥

[३७]

दुष्टता प्रतिरोधक

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

लक्ष्मी विभो देव ! यथा तवास्ति,
तथा न ह्यर्यादिषु नायकेषु ।
तेजो यथा सूर्यविमानकस्य,
तारागणस्य प्रभवतीह नो वा ॥ ३७ ॥

धर्म-देशना के विधान मे, था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि मे है देखी जाती ।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रो मे लेखी जाती ॥३७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्ली ब्लूं ॐ ह्री मनोवाछित-सिद्धयै नमो नमः । अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

ॐ ह्री धर्म्मोपदेशसमये समवसरणादिलक्ष्मीविभूतिविराजमानाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥३७॥

(विधि) ऋद्धि-मंत्र द्वारा थोड़ासा जल मंत्रितकर मुंहपर छीटा देनेसे दुर्जन वशमे हो जाते हैं । उनकी जवान वन्द हो जाती है ।

अर्थ—हे समवसरणाधिपते ! धर्मोपदेश के समय समवसरणादिक जैसी विभूति आपको प्राप्त हुई, वैसी विभूति अन्य किसी देव को प्राप्त

नहीं हुई। ठीक ही है कि जैसी कान्ति सूर्य की होती है वैसी कान्ति शुक्र आदि ग्रहों को प्राप्त हो सकती है क्या ? अर्थात् नहीं ॥३७॥

The glory, which Thou attained at the time of giving instruction in religious matters, is attained, O Jinendra ! by nobody else. How can the lustre of the shining planets and stars be so (bright) as the darkness-destroying effulgence of the sun ? 37.

[३८]

हस्तिमदभंजक तथा वैभववर्धक

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमर - नाद - विवृद्ध - कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत - मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

मत्तोऽपि हस्ती मदलोलया च,
नायाति नाम्ना निवसन्मुखे हि ।
संसारपाथोनिधितारकस्य,
देवाधिदेवस्य जिनस्य कर्त्तुः ॥ ३८ ॥

लोल कपोलों से झरती है, जहाँ निरन्तर मद की धार।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौरे गुंजार॥
क्रोधासक्त हुआ यो हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल।
देखभक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणोबलीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतकोपस्थापिनी परमंत्रप्रणाशिनी देवि-देवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

ॐ ह्रीं हस्त्यादिगर्वदुर्द्धरभयनिवारणाय क्लीमहाबीजाक्षर-
सहिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥३८॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मत्र का आराधन करने से हस्ती का मद नष्ट होता है और अर्थप्राप्ति होती है ॥३८॥

अर्थ—हे अभयप्रद ! जो प्राणी आपकी शरण लेते हैं; वे मदोन्मत्त, उच्छृङ्खल, आक्रमणकारी और अवश हाथी को देख कर भी भयभीत नहीं होते ॥३८॥

Those, who have resorted to You, are not afraid even at the sight of the Airavata-like infuriated elephant, whose anger has been increased by the buzzing sound of the intoxicated bees hovering about its cheeks soiled with the flowing rut, and which rushes forward. 38

[३९]

सिंहशक्ति-संहारक

भिन्नेभकुम्भ - गलदुज्ज्वल -शोणिताक्त-
मुक्ताफल - प्रकर - भूषित भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥

उत्तुङ्ग - पुच्छेन विराजमान,
आरक्तनेत्रैः रदनै विशिष्ट :
कौ केशरी देव ! सुनाममात्रात्,
करोति क्रीडां तु विडालवत्सः ॥ ३९ ॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के; जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कान्तिमान् गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥

जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट।
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उसपर कर सकता खोट ॥३९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं णमो वचनबलीणं।

(मत्र) ॐ नमो एषु दत्तेपु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्ति वर्णा येषु मत्रा पुन स्मर्तव्या अतोना परमंत्रनिवेदनाय नमः स्वाहा। (I)

ॐ ह्रीं युगादिदेवनामप्रसादात् केशरिभयविनाशकाय क्लीं महा-
बीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥३९॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन करने से जङ्गल का राजा सिंह भी परास्त हो जाता है। और सर्प का भय भी नही रहता।

अर्थ—हे परमशांतिदायक देव! जिसने मदोन्मत्त हस्तियों के उन्नत गण्डस्थलों को अपने नुकीले नाखूनों से क्षत-विक्षत करके उनमे निकलने वाले रुधिर से सने गज-मुक्ताओं को बिखेर कर अवनीतल को अलंकृत कर दिया और अपने शिकार पर छलांग भरकर आक्रमण करने के लिये उद्यत ऐसे दहाड़ते हुए खूंखार सिंह के पजों के बीच पड़े हुए आपके परम भक्तों पर वह वार नही कर सकता ॥३९।

Even the lion, which has decorated a part of the earth with the collection of pearls besmeared with bright blood flowing from the pierced heads of the elephants though ready to pounce does not attack the traveller who has resorted to the mountain of Thy feet. 39

[४०]

सर्वाग्नि शासक

कल्पान्तकाल - पवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानल ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।

विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

त्वन्नामतोयेन कृता सुधारा,
वह्निप्रतापं हरति क्षणात्सा ।
भवाग्नितापप्रलयङ्करस्त्वं,
अतस्तवेष्टिं विदधे वरार्घ्यैः ॥ ४० ॥

प्रलय काल की पवन उठाकर, जिसे बढा देती सब ओर ।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अङ्गारो का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार ।
प्रभु के नाम-मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं अग्ने उपशमं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं संसाराग्नितापनिवारणाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥४०॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन करने से अग्नि का भय मिट जाता है ॥४०॥

अर्थ—हे लोकपालक ! आपके गुणगान से भयङ्कर तथा वेग से बढ़ता हुआ दावानल भी भक्तजनों का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता ॥४०॥

The conflagration of the forest, which is equal to the fire fanned by the winds of the doomsday and which emits bright burning sparks and which advances forward as if to devour the world, is totally extinguished by the recitation of Thy name. 40.

[४१]

भुजंग (सर्प) भय भंजक

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

क्रोधेन युक्तं फणिराजसर्पं,
क्रोधं परित्यज्य प्रलापवान्सः ।
करोति दूरं वरदेवनाम्ना,
नानाविधप्राणनिधानदानात् ॥ ४१ ॥

कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तव अहि-दमनी का, लिया जिन्होने हो आश्रय ।
पग रख कर निशङ्क नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो श्रा श्री श्रृं श्र जलदेवि कमले कमले पद्महृदनिवासिनि पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धि देहि मनोवाछितं कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं त्वन्नामनागदमनीशक्तिसम्पन्नाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥४१॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि मंत्र जपने और झाडने से सर्प का विष उतर जाता है ॥४१॥

अर्थ— हे सातिशय नाम वाले देव ! आपके पापविमोचक पुण्यवर्धक शुभनामरूपी नागदमनी (जडी-बूटी) को भक्तिसहित गाढ़श्रद्धापूर्वक अन्त.करण में धारण करने वाले मानव उस भयकर उद्धत

फुंकार करते हुए जहरीले नाग को भी निर्भय होकर रौंदते हुए चले जाते हैं; कि जिसके नेत्र धधकते हुए अँगारे की तरह आरक्त वर्ण हो रहे हों और जो काली कोयल के कंठ के समान काला हो तथा जो क्रोधोन्मत्त होकर विशाल फण फैलाये डँसने के लिए अतिशीघ्रता से पवनवेग सा झपटता चला आता हो ।।४१।।

The man, in whose heart abides the Mantra that subdues serpents, viz, Your name, can interpidly go near the snake, which has its hood expanded, eyes blood-shot, and which is haughty with anger and black like the throat of the passionate cuckoo. 41.

[४२]

युद्धभय विध्वंसक

वल्गत्तुरंग – गजगर्जित – भीमनाद–
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूख – शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ।।४२।।

सङ्ग्रामभूमौ मृतभूरिजीवे,
मातङ्ग - चक्राश्वपदातिमध्ये ।
सुखेन चायान्ति विजित्य शत्रून्,
सदा मनोऽब्जे मुदितो यजे तम् ।। ४२ ।।

जहाँ अश्व की और गजो की, चीत्कार सुन पड़ती घोर ।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर ।।
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम ।
सूर्य-तिमिर सम शूर–सैन्य का, कर देता है काम तमाम ।।४२।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो नमिऊणविपप्रणाशनरोगशोकदोपग्रहकप्पदुमच्चजाईं सुहनाक—गहणसकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा । (!)

ॐ ह्रीं संग्राममध्ये क्षेमङ्कराय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
श्रीवृपभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४२॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की आराधना से भयङ्कर युद्ध का भय मिट जाता है ॥४२॥

अर्थ—हे महासमरभयविनाशक देव ! जैसे उदयाचल की उच्च-शेखर से उदीयमान दिनकर को किरण समूह के समक्ष रात्रि का काला अन्धकार स्थिर नहीं रह सकता, वैसे ही समराङ्गण में आपके पुण्योत्पादक नाम की माला जपने वाले एक निवल पुरुष के सामने चौकड़ी भरते हुये तेजतुरङ्गों की हिनहिनाहट और चिघाड़ते हुए हस्तिदलसमेत युद्ध में सलग्न धीर राजाओं की शस्त्रसुसज्जित पराक्रमी सेना भी अपना अस्तित्व रखने में विफल हो जाती है ॥४२॥

Like the Darkness dispelled by the luster of the rays of the rising sun, the army, accompanid by the loud roar of the prancing horses and elephants, even of powerful kings, is dispersed in the battle-field with the mere recitation of Thy name. 42

[४३]

सर्व शान्तिदायक

कुन्ताग्रभिन्न - गजशोणित - वारिवाह,
वेगावतार - तरणातुर - योध-भीमे ।
युद्धे जयं निजितदुर्जयजेयपक्षाः,
त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

दन्ताग्रभिन्नेषु सुमस्तकेषु,
परस्परं यत्र गजाश्वयुद्धे।
मनुष्य आयाति सुकौशलेन,
त्वन्नाममन्त्रस्मरणाज्जिनेश । ॥ ४३ ॥

रण में भालों से बेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर है, रुधिर-नदी करने को पार॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तँह, लख अरिसेना दुर्जयरूप।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासनसेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रवविनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी इष्टसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं वनगजादिभयनिवारणाय क्लीमहावीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥४३॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र जपने से भय मिटता है और सब प्रकार की शान्ति प्राप्त होती है ॥४३॥

अर्थ—हे दुर्जयशत्रुमानभञ्जक देव ! जिस महासमर में बरछों की नुकीली नोंकों से बेधे गये हाथियों के विशालकाय शरीर से निःसृत, रक्त रूपी अमर्यादित जल-प्रवाह के बहाव में बहते हुये, उसे तैर कर अविलम्ब विजय प्राप्त करने के लिये अधीर वीर योद्धाओं से जो प्रचण्ड युद्ध हो रहा है; ऐसे महायुद्ध में आपके पुनीत पादपद्मों की पूजा करने वाले भक्तजन अजेय शत्रु का अभिमान चूर-चूर कर बड़ी शान के साथ विजयपताका फहराते हुए आनन्द विभोर हो जाते हैं ॥४३॥

Those, who resort to Thy lotus feet, get victory by defeating the invincibly victorious side (of the enemy) in

the battle-field made terrible with warriors, engaged in crossing speedily the flowing currents of the river of the blood-water of the elephants pierced with the pointed spears. 43

[४४]

सर्वापत्तिविनाशक

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषण - नक्रचक्र-
पाठीनपीठ - भयदोल्वण - वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखरस्थित - यानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

कल्पान्तवातेन गतं विकार,
सचक्रमक्रादिकजीवपूर्णं ।
अब्धि समुत्तीर्य नरो भुजाभ्यां,
प्रयाति शीघ्रं तव पादचित्तः ॥ ४४ ॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घड़ियाल ।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र मे फँसी हुई हो, बीचो बीच अगर जल-यान ।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लङ्काधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा (!) ।

ॐ ह्रीं गंभीरापत्तिविनाशनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४४॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की आराधना से सब प्रकार की आपत्तियां हट जाती है ॥४४॥

अर्थ—हे भक्तवत्सल ! आपके निष्कलङ्क अनन्त गुणों का बारम्बार चिन्तवन करने वाले शरणागत मानवों के विकराल मुँह फैलाये हुए इधर-उधर लहराते विशालकाय मच्छ मगर आदि जल जन्तुओं से ओत-प्रोत और भयावनी बडवाग्नि से विक्षुब्ध हो रहे समुद्र की तूफानी लहरों में डगमगाते जल-पोत बिना विपत्ति के निर्भयतापूर्वक अपारपारावार से पार हो जाते हैं। अर्थात् आपके स्मरण से भक्तों पर आई हुई आकस्मिक आपत्तियाँ अविलम्ब विलीन हो जाती हैं ॥४४॥

Even on that ocean, which contains the dreadful submarine fire, the agitated and therefore, terrific alligators and fishes fearlessly move those, though their ships are placed on high dashing waves, who but remember Thee. 44.

[४५]

जलोदरादिरोग एवं सर्वापत्तिहारक

उद्भूतभीषण - जलोदर - भारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

जलोदरैः कुष्टकुशूलरोगैः,
शिरोव्यथा - व्याधिबहुप्रकारैः ।
सुपीडितानां भवति क्षणे हि,
विरोगिता त्वत्स्मरणात्प्रभोऽत्र ॥४५॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीडा भार।
जीने की आशा छोडी हो, देख दशा दयनीय अपार॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद – रज संजीवन।
स्वास्थ्य-लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन ॥४५॥

(ऋद्धि) ॐ अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोगकुष्टज्वरोपशमं (शान्ति) कुरु-कुरु स्वाहा ।

ॐ ह्रीं दाहतापजलोदराष्टदशकुष्टसन्निपातादिरोगहराय क्लीं
महावीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४५॥

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मन्त्र की आराधना से समस्त रोग नष्ट हो जाते है तथा उपसर्ग आदि का भय नही रहता ॥४५॥

अर्थ—हे पूज्यपाद ! जैसे अमृत के लेप से मनुष्य निरोग और सुन्दर हो जाता है, उसी प्रकार आपके चरणकमल के रजरूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा) से भीषण जलोदर आदि रोगों से पीड़ित मनुष्य भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाते हैं ॥४५॥

Even those, who are drooping with the weight of terrible dropsy and have given up the hope of life and have reached a deplorable condition, become as beautiful as Cupid by besmearing their bodies with the nectarlike pollen dust of Thy lotus-feet. 45.

[४६]

बन्धन विमोक्षक

आपादकण्ठ – मुरुश्रृङ्खलवेष्टिताङ्गाः,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

केनापि दुष्टेन नृपेण धर्मी,
सम्बन्धितः श्रृङ्खलया नरश्च।
स त्वा जव मुञ्चति बन्धतोऽद्य,
संसारपाशप्रलयं नमामि ॥ ४६ ॥

लोह-शृङ्खला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेडियो, से अधीर जो है अतित्रस्त ॥
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम-मन्त्र की जाप।
जप कर गत-बन्धन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रां ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः स्वाहा।

ॐ ह्रीं नानाविधकठिनबन्धनदूरकरणाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४६॥

(वधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धिमंत्र को १०८ बार जपने से शत्रु वश में होता है, विजयलक्ष्मी प्राप्त होनी है और शस्त्रादि के घाव शरीर मे नहीं हो पाते ॥४६॥

अर्थ—हे महामहिम! लोहे की बड़ी-बड़ी वजनदार सांकलों से जिनके शरीर के समस्त अवयव सिर से लेकर पाव तक बहुत ही मजबूती से जकड़े हुये हैं और हाथों पैरों में कड़ी दो लोहशलाकों की बेडियों के पड़े रहने मे निरन्तर उनकी बार बार रगड़ से घुटने और जंघायें छिल गई हैं, ऐसे लोह श्रृङ्खलाबद्ध मानव भी आपके शुभ नाम-रूपी पाप-विनाशक पवित्र मन्त्र का सत्य हृदय से स्मरण कर क्षणभर में अपने आपही बधन की कठोर यातना से छुटकारा पाकर निर्द्वन्द और निर्भय हो जाते है। ४६॥

By muttering day-and-night the sacred syllables of Thy name, even those, whose bodies are fettered from head to feet by heavy chains and whose shanks are lacerated by the night gyves, instantaneously get rid of the fear of their bondage. 46

[४७]

अस्त्रशस्त्रादिशक्ति निरोधक

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

रोगज्वराः कुष्टभगन्दराद्याः,
जलाग्निघोरा विविधाश्च विघ्नाः ।
शीघ्रं क्षयं यान्ति जिनेशनाम,
सञ्जप्यमानस्य नरस्य पुण्यात् ॥ ४७ ॥

वृषभेश्वर के गुण स्तवन का, करते निशिदिन जो चिंतन ।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन् ॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागार ।
इनके अतिभीषण दुःखो का, हो जाता क्षण मे संहार ॥४७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो वड्ढमाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रा ह्री ह्रं ह्रौं ह्र: क्षः श्री ह्री फट् स्वाहा ॥४७॥

ॐ ह्री बहुविघविघ्नविनाशाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४७॥

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धि-मन्त्र को १०८ वार जपने से शत्रु वश में होता है और शस्त्रादि के घाव शरीर मे नही हो पाते।

अर्थ—हे वृषभेश्वर! इस प्रकार जो विवेकशील बुद्धिमान् पुरुष आपके इस परम पवित्र स्तोत्र का रात दिन श्रद्धासहित चिन्तवन, अध्ययन, आराधन और मनन करते हैं, उनके मदोन्मत्त हाथी, विकराल सिंह, भभकता दावानल, भयंकर सर्प, बीभत्स संग्राम, विक्षुब्ध समुद्र, शस्त्रप्रहार और बन्धनजनित भय भी भयाकुल होकर अतिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। फिर लौटकर आपके भक्तजनों की ओर वार नहीं करते ॥४७॥

The intelligent man, who chants this prayer offered to Thee is in no time liberated from the fear born of wild elephants, lion, forest-conflagration, snakes, battles oceans, dropsy and shaekles. 47.

[४८]

सर्व सिद्धि दायक

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र! गुणै-निंबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

भक्तामराख्यं स्तवनं यजामि,
श्रीमानतुङ्गेन कृतं विचित्रम्।

कवित्वहीनो मतिशास्त्रहीनो,
भक्त्यैकया प्रेरितसोमसेन: ॥ ४८ ॥

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम।
गूँथी विविध वर्ण सुमनो की, गुण-माला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण बनाते हैं।
मानतुङ्ग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्षलक्ष्मी पाते है ॥४८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वसाहूण ।

(मत्र) महतिमहावीरवड्ढमाणबुद्धिरिसीण ॐ ह्रा ह्री ह्रं ह्रौ ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।

ॐ ह्री सकलकार्यसाधनसमर्थाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४८॥

(विधि) श्रद्धासहित ४९ दिन तक १०८ वार ऋद्धि-मत्र जपने से मनोवाञ्छित समस्त कार्यो की सिद्धि होती है ॥४८॥

अर्थ—जैसे पुष्पमाला धारण करने से मनुष्य को शोभा (लक्ष्मी) प्राप्त होती है उसी प्रकार इस स्तोत्ररूपी माला के पहिनने (सदा पाठ करने) से मनुष्य का परम्परा से मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥४८॥

The Goddess of wealth of her own accord resorts to that man of high self-respect in this world, who alwes place round his neck, O Jinendra This garland of orisons, which has been sturng by me with the strings of the excellences out of devotion, and which looks charming on account of the multi-coloured flowers in the shape of beautiful words. 48.

[४९]

नानाविघ्नहरं प्रतापजनकं, संसारपारप्रदं।
संस्तुत्यं श्रीदं करोमि सततं, श्रीसोमसेनोऽप्यहम् ॥
पूर्णार्घ्येण मुदा सुभव्यसुखदं, आदीश्वराख्यापरं।
हीरापण्डितसद्परोधवशतः स्तोत्रस्य पूजाविधिम् ॥४९॥

ॐ ह्रीं हृदयस्थिताय चतुर्विंशति-दलकमलाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यम् ॥४९॥

[५०]

वरसुगन्ध-सुतन्दुलपुष्पकैः, प्रवरमोदक-दीपक-धूपकैः।
फलभरैः परमात्मप्रदत्तकं, प्रवियजे जयदं धनदं जिनम्॥५०॥

ॐ ह्रीं हृदयस्थिताय अष्टचत्वारिंशद्दलकमलाधिपतये क्लीमहाबीजाक्षर-सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय महापूर्णार्घ्यम् ॥५०॥

जलगन्धाष्टभिर्द्रव्यै-र्युगादिपुरुषं यजे।
सोमसेनेन संसेव्यं, तीर्थ-सागर-चर्चितम् ॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो जिणाणं अर्घ्यम् ॥१॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं अर्घ्यम् ॥२॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं अर्घ्यम् ॥३॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं अर्घ्यम् ॥४॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं अर्घ्यम् ॥५॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं अर्घ्यम् ॥६॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं अर्घ्यम् ॥७॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पादानुसारीणं अर्घ्यम् ॥८॥

ॐ ह्री अर्हं णमो सभिन्नसोदाराणं अर्घ्यम् ॥९॥
ॐ ह्रो अर्हं णमो सयंवृद्धीणं अर्घ्यम् ॥१०॥
ॐ ह्री अर्हं णमो पत्तेयवुद्धीणं अर्घ्यम् ॥११॥
ॐ ह्री अर्हं णमो वोहियवुद्धाण अर्घ्यम् ॥१२॥
ॐ ह्री अर्हं णमो ऋजुमदीण अर्घ्यम् ॥१३॥
ॐ ह्री अर्हं णमो विउलमदीणं अर्घ्यम् ॥१४॥
ॐ ह्री अर्हं णमो दसपुव्वीण अर्घ्यम् ॥१५॥
ॐ ह्री अर्हं णमो चउदसपुव्वीण अर्घ्यम् ॥१६॥
ॐ ह्री अर्हं णमो अट्ठागमहानिमित्तकुशलाणं अर्घ्यम् ॥१७॥
ॐ ह्री अर्हं णमो विउयणयट्ठिपत्ताण अर्घ्यम् ॥१८॥
ॐ ह्री अर्हं णमो विज्जाहराण अर्घ्यम् ॥१९॥
ॐ ह्री अर्हं णमो चारणाण अर्घ्यम् ॥२०॥
ॐ ह्री अर्हं णमो पण्णसमणाणं अर्घ्यम् ॥२१॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं अर्घ्यम् ॥२२॥
ॐ ह्री अर्हं णमो आसीविसाण अर्घ्यम् ॥२३॥
ॐ ह्री अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं अर्घ्यम् ॥२४॥
ॐ ह्री अर्हं णमो उग्गतवाणं अर्घ्यम् ॥२५॥
ॐ ह्री अर्हं णमो दित्ततवाण अर्घ्यम् ॥२६॥
ॐ ह्री अर्हं णमो तत्ततवाणं अर्घ्यम् ॥२७॥
ॐ ह्री अर्हं णमो महातवाणं अर्घ्यम् ॥२८॥
ॐ ह्री अर्हं णमो घोरतवाण अर्घ्यम् ॥२९॥
ॐ ह्री अर्हं णमो घोरगुणाण अर्घ्यम् ॥३०॥
ॐ ह्री अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाण अर्घ्यम् ॥३१॥
ॐ ह्री अर्हं णमो घोरबभचारिणं अर्घ्यम् ॥३२॥
ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ॥३३॥
ॐ ह्री अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ॥३४॥
ॐ ह्री अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण अर्घ्यम् ॥३५॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो त्रिप्पोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ॥३६॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ॥३७॥
ॐ ह्री अर्हं णमो मणोबलीणं अर्घ्यम् ॥३८॥
ॐ ह्री अर्हं णमो वचनबलीणं अर्घ्यम् ॥३९॥
ॐ ह्री अर्हं णमो कायबलीणं अर्घ्यम् ॥४०॥
ॐ ह्री अर्हं णमो खीरसवीणं अर्घ्यम् ॥४१॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं अर्घ्यम् ॥४२॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं अर्घ्यम् ॥४३॥
ॐ ह्री अर्हं णमो अमियसवाणं अर्घ्यम् ॥४४॥
ॐ ह्री अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं अर्घ्यम् ॥४५॥
ॐ ह्री अर्हं णमो बड्ढमाणाणं अर्घ्यम् ॥४६॥
ॐ ह्री अर्हं णमो वड्ढमाणाणं अर्घ्यम् ॥४७॥
ॐ ह्री अर्हं णमो सव्वसाहूण अर्घ्यम् ॥४८॥

ॐ ह्रीं क्लीं श्री अर्हं श्रीवृषभनाथतीर्थङ्कराय नमः ।

अनेन मंत्रेण लवङ्गैरष्टोत्तरशतं १०८ जाप्यं विधेयम् ।

भक्तामर महामंडल-पूजा जयमाला

(त्रोटक-वृत्तम्)

शुभदेश-शुभङ्कर-कौशलकं, पुरुपट्टन-मध्य-सरोज-समं ।
नृप-नाभि-नरेन्द्र-सुनं सुधियं, प्रणमामि सदा वृषभादि जिनं॥

कृत-कारित-मोदन-मोदधरं, मनसा वचसा शुभकार्य-परं ।
दुरिता-पहरं चामोद-करं, प्रणमामि सदा वृषभादि जिनं ॥

तव देव सुजन्म-दिने परमं, वरनिर्मित-मङ्गल-द्रव्यशुभं ।
कनकाद्रिसु-पांडुक-पीठगतिं, प्रणमामि सदा वृषभादि जिनं ॥

व्रतभूषण-भूरि-विशेष-तनुं, करकङ्कण-कज्जल-नेत्रचणं ।
मुकुटाब्ज-विराजित-चारुमुखं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनम् ॥

ललितास्य-सुराजित-चारुमुखं, मरुदेवि-समुद्भव-जातसुख ।
सुरनाथ-सुताण्डवनृत्यधरं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनम् ॥

वर-वस्त्र-सरोज-गजाश्वपदं, रथ-भृत्यदलं चतुरङ्गजदं ।
शिव-भीरु-सुभोग-सुयोगधनं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनं ॥

गतरागसुदोष-विराग-कृतिं, सुतपोबल-साधितमुक्तिगतिं ।
सुख-सागर-मध्य-सदानिलयं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनं ।

सुसमोसरणे रति-रोगहरं, परिसद्दश-युग्म-सुदिव्य-ध्वनिं ।
कृत-केवलज्ञान-विकाशतनं प्रणमामि सदा वृषभादिजिनं ॥

उपदेश-सुतत्त्व-विकाशकरं, कमलाकर-लक्षण-पूर्ण-भरं ।
भवित्रासित-कर्म-कलङ्कहरं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिन ॥

जिन ! देहि सुमोक्षपद सुखदं, घनघाति-घनाघन-वायुपदं ।
परमोत्सवकारित-जन्म-दिन, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनम् ॥

संसार-सागरोत्तीर्णं, मोक्षसौख्य-पदप्रदं ।
नमामि सोमसेनार्च्यम्, आदिनाथं जिनेश्वरम् ॥

ओं ह्रीं पूजाकर्तुः कर्मनाशनाय आगतविघ्नभयनिवारणाय अर्घ्यम् ।

स भवति जिनदेवः पञ्चकल्याणनाथः,
कलिलमलसुहर्त्ता, विश्वविघ्नौघहन्ता ॥
शिवपदसुखहेतुः नाभिराजस्य सूनुः,
भवजलनिधिपोतो, विश्वमोक्षाय नाथः ॥

इत्याशीर्वादं । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु, सुकीर्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्य-समृद्धिरस्तु ।
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोऽस्तु पुत्र-
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव सिद्धपति-प्रसादात् ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

●

अथ शान्ति–पाठ

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपती चक्री करें ।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा रचें ॥
धन-क्रिया-ज्ञान-रहित न जाने, रीति पूजन नाथ जी ।
हम भक्तिवश तुम चरण आगे, जोड़ लीने हाथ जी ॥

दुख हरन, मगल करन, आशाभरन, पूजन जिन सही ।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, भक्ति है स्वयमेव ही ॥

तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचों कहा ।
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा ॥

संसार भव-वन विकट में वसुकर्म मिल आतापियो ।
तिस दाह से आकुलित चिरतें, शांति-थल कहुँ ना लियो ॥

तुम मिले शान्ति स्वरूप शान्ती, सुकरण समरथ जगपती ।
वसुकर्म मेरे शान्त कर दो, शान्तिमय पंचम-गती ॥

जब लों नहीं शिव लहों तब लों, देहु यह धन पावना ।
सत्सङ्ग शुद्धाचरण श्रुत, अभ्यास आतम भावना ॥

तुम बिन अनन्तानन्त काल, गयो रुलत जग जाल मे।
अब शरण आयो नाथ युगकर, जोड़ नावत भाल मैं॥

दोहा—कर-प्रमाण के माप तें, गगन नपै किह भत।
त्यों तुम गुण-वर्णन करत, कवि पावे नहि अत॥

टुक अवलोकन आप को, भयो धर्म अनुराग।
इकटक देखू नित्य तो, बढ़े ज्ञान वैराग॥

पन्थी प्रभु मन्थी मथन, कथन तुम्हार अपार।
करो दया सब पै प्रभो, जामे पावे पार॥

●

विसर्जन पाठ

ॐ ह्नी अस्मिन् भक्तामरमहाकाव्यमंडल-पूजाविधान-कर्मणि आहूयमाना देवगणा स्वस्थानं गच्छन्तु। अपराधक्षमापणं भवतु।

आरती

ओम् जय आदिनाथ देवा,
ओम् जय आदिनाथ देवा॥
सुर नर मुनि गुण गाते,
तुम कैलाशपतो कहलाते,
हम दर्शन कर पाप मिटाते,
अन्तर बाहर दीप जलाते,
करते चरणो की सेवा,
ओम् जय आदिनाथ देवा॥

इति श्री सोमसेनकृत भक्तामरमहामण्डलपूजा समाप्ता।

●

भक्तामर स्तोत्र के मन्त्रों की साधनविधि

भक्तामर स्तोत्र के ४८ श्लोकों के जो ४८ मन्त्र हैं उनकी साधन-विधि तथा फल क्रमशः नीचे लिखे अनुसार है :—

१—प्रतिदिन ऋद्धि और मन्त्र १०८ बार जपने से तथा यन्त्र पास रखने से सब तरह के उपद्रव दूर होते हैं।

२—काले वस्त्र पहन कर, काले आसन पर दंडासन से बैठकर, काली माला से पूर्व दिशा की ओर मुख करके प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि, मंत्र २१ दिन तक अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जपना चाहिए इससे शत्रु तथा शिरपीडा नष्ट होती है। यन्त्र पास रखने से नजर बन्द होती है। इन दिनों में एक बार भोजन करना चाहिये तथा प्रतिदिन नमक से होम करना चाहिए।

३—कमलगट्टा की माला से ऋद्धि और मन्त्र ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपना चाहिये। होम के लिये दशागधूप हो और गुलाब के फूल चढाये जावें। चुल्लू में जल मंत्रित करके २१ दिन तक मुख पर छींटे देने से सब प्रसन्न होते हैं। यन्त्र पास में रखने से शत्रु की नजर बन्द हो जाती है।

४—सफेद माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि और मंत्र जपना चाहिये, सफेद फूल चढाना चाहिये। पृथ्वी पर सोना तथा एका-शन करना चाहिए। यदि कोई मछली पकड रहा हो तो २१ कंकड़ियाँ लेकर प्रत्येक कंकडी ७ बार मंत्र पढ कर जल में डाली जावे तो एक भी मछली जाल या कांटे में न आवेगी।

५—पीला वस्त्र पहिन कर सात दिन तक १००० ऋद्धि, मंत्र प्रतिदिन जपना, पीले फूल चढ़ाना तथा कुन्दरु की धूप जलाना चाहिये। जिसके

नेत्र दुखते हो, उसे दिन भर भूखा रखकर बतासे जल में घोल कर पिलाये जावें या नेत्रों पर छींटे दिये जावें तो नेत्र को आराम हो जाता है। मंत्रित जल कुए मे छिडकने से लाल कीडे कुंए में नही होने पाते। यन्त्र अपने पास रखना चाहिये।

६—२१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने से और यन्त्र अपने पास रखने से विद्या प्राप्त होती है। बिछुडा हुआ व्यक्ति आ मिलता है। मन्त्र ऋद्धि का जाप लाल वस्त्र पहिन कर करना चाहिए, पृथ्वी पर सोना तथा एक वार भोजन करना चाहिये, लाल फल चढाना चाहिये अथवा कुन्दरु की धूप खेना चाहिये।

७—प्रतिदिन हरी माला से १०८ वार ऋद्धि मन्त्र २१ दिन जपना चाहिये। ऐसा करने से तथा यन्त्र को गले में बाधने से साप का विष प्रभाव नही करता। यदि १०८ वार ऋद्धि मंत्र से कंकडी मंत्रित करके सर्प के सिर पर मारी जावे तो सर्प कीलित हो जाता है। लोबान की धूप खेना चाहिये। यन्त्र हरा होना चाहिये।

८—अरीठे रीठा के बीजो की माला के द्वारा ११ दिन तक १००० जाप करने से तथा यन्त्र को अपने पास रखने से सब प्रकार का अरिष्ट दूर होता है। यदि नमक के ७ छोटे टुकडो को १०८-१०८ वार मंत्र पढकर मंत्रित करके पीडायुक्त किसी अंग को झाडा जावे तो पीड़ा दूर हो जाती है। घी और दूध खेना चाहिये तथा नमक की डली से होम करना चाहिये।

९—एक सौ आठ वार ऋद्धि मंत्र द्वारा चार कंकड़ियो को मंत्रित करके यदि उनको चारो दिशाओ में फेंका जावे तो चोर, डाकू आदि का किसी तरह का भय नही रहता।

१०—पीली माला से प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि मंत्र का ७ या

१० दिन जाप करने से तथा यन्त्र पास में रखने से कुत्ते के काटने का विष उतर जाता है। नमक की ७ डलियो को, प्रत्येक को १०८ वार मंत्र द्वारा मंत्रित करके खिलाया जाय तो कुत्ते का विष असर नहीं करता। धूप कुन्दरु की होना चाहिये।

११—लाल माला से २१ दिन तक (प्रतिदिन १०८ वार) वैठकर या खड़े रहकर सफेद माला से १०८ वार जपने पर (दीप, धूप, नैवेद्य, फल लिये हुये) एवं यंत्र अपने पास रखने से जिसे अपने पास बुलाना हो वह आ जाता है। धूप कुन्दरु की हो।

१२—लाल माला से मन्त्र और ऋद्धि का जाप ४२ दिन तक प्रति-दिन १००० करना चाहिये। दशाग धूप खेनी चाहिये। यन्त्र अपने पास रखने तथा मंत्र द्वारा १०८ बार तेल मंत्रित करके हाथी को पिलाने पर हाथी का मद उतर जाता है।

१३—पीली माला के द्वारा ७ दिन प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र का जाप करना चाहिये, एक वार भोजन तथा पृथ्वी पर शयन करना चाहिये। यन्त्र पास रखने मे तथा ७ कंकडी लेकर प्रत्येक को १०८ वार मंत्र से मंत्रित कर चारों दिशाओ में फेंकने से चोरो का भय नही रहता, मार्ग में और भी कोई भय नही आने पाता।

१४—सात कंकडी लेकर प्रत्येक को २१ वार ऋद्धि मंत्र द्वारा मंत्रित करके चारों ओर फेंकने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से व्याधि, शत्रु आदि का भय नष्ट हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा वात रोग नष्ट होता है।

१५—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ वार तेल मंत्रित करके उस तेल को मुख पर लगाने से राजदरबार में प्रभाव बढता है, सौभाग्य और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। १४ दिन तक लाल माला से १००० जाप करना चाहिए। दशाग धूप खेना चाहिये। एक वार भोजन करना चाहिए।

१६—हरी माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र का जाप ९ दिन तक करें, कुन्दरु की धूप खेवे। यन्त्र पास में रखने से तथा मंत्र का १०८ बार जाप करने से राजदरवार मे प्रतिपक्षी की हार होती है। शत्रु का भय नही रहता।

१७—सफेद माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र की जाप ७ दिन तक करे, चन्दन की धूप खेवे। यंत्र पास रखने से तथा शुद्ध अछूता जल २१ बार मंत्र कर पिलाने से पेट की असाध्य पोड़ा, वायुशूल, वायुगोला आदि मिट जाते हैं।

१८—लाल माला द्वारा प्रतिदिन ऋद्धि मंत्र का १००० जाप ७ दिन तक करना चाहिये, दशांग धूप खेनी चाहिये, एक बार भोजन करना चाहिये। यंत्र को पास में रखने से तथा १०८ बार जाप करने से शत्रु की सेना का स्तम्भन होता है।

१९—यन्त्र अपने पास रखने से तथा ऋद्धि मंत्र का १०८ बार जाप करने से अपने ऊपर दूसरे के द्वारा प्रयोग किया गया मंत्र प्रयोग, जादू, मूठ, टोटका आदि का प्रभाव नही होने पाता, न उच्चाटन का भय रहता है।

२०—यन्त्र को अपने पास रखने से तथा मन्त्र को १०८ बार जपने से सन्तान प्राप्त होती है, लक्ष्मी का लाभ होता है, सौभाग्य बढता है, विजय मिलती है, बुद्धि बढ़ती है।

२१—यन्त्र अपने पास रखने से तथा प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि मन्त्र ४१ दिन तक जपने से सब अपने अधीन हो जाते हैं।

२२—यन्त्र गले में बांधने से तथा हल्दी की गांठ को २१ बार मन्त्र द्वारा मंत्रित करके चवाने से भूत, पिशाच, चुडैल आदि दूर हो जाते हैं।

२३—पहले १०८ बार मन्त्र जप कर अपने शरीर की रक्षा करे फिर जिसको प्रेतबाधा हो उसे झाड़े, यन्त्र पास रखे तो प्रेत-बाधा दूर होती है।

२४—प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र जपना चाहिए। २१ बार मन्त्र पढ कर राख मंत्रित करके उसे शिर पर लगाने से शिरपीडा दूर हो जाती है।

२५—ऋद्धि और मंत्र के जपने से तथा यन्त्र को पास में रखने से चीज उतरती है तथा आराधक पर अग्नि का प्रभाव नही होता।

२६—ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार तेल मंत्रित करके शिर पर लगाने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से आधाशीशी आदि शिर के रोग दूर हो जाते है। उस तेल की मालिश करने से तथा मंत्रित जल पिलाने से प्रसूति शीघ्र आसानी से हो जाती है।

२७—काली माला से ऋद्धि मन्त्र का जाप करने से, प्रतिदिन एक बार अलोना भोजन करने से तथा कालीमिर्च से हवन करने पर शत्रु का नाश होता है। ऋद्धि और मन्त्र का जाप करते रहने से तथा यंत्र अपने पास रखने से मन्त्र आराधना में शत्रु कुछ हानि नही पहुँचा सकता।

२८—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यंत्र पास मे रखने से व्यापार में लाभ, विजय और सुख प्राप्त होता है। सब कार्य सिद्ध होते हैं।

२९—ऋद्धि तथा मन्त्र के द्वारा १०८ बार मंत्रित जल पिलाने से और यंत्र को पास रखने से दुखती हुई आँखें अच्छी हो जाती है, बिच्छू का विष उतर जाता है।

३०—मंत्र की आराधना करने तथा यन्त्र अपने पास रखने से शत्रु का स्तम्भन होता है, चोर तथा सिंहादि का भय नही रहता।

३१—यन्त्र अपने पास रखने तथा मन्त्र की जाप से राज्य में सम्मान होता है, दाद, खुजली आदि चर्मरोग नही होते।

३२—कुमारी कन्या के द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि मन्त्र द्वारा मंत्रित करके उस सूत को गले में बांधने से और यन्त्र पास रखने से संग्रहणी आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं।

३३—कुमारी कन्या द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि मत्र द्वारा २१ बार मत्रित करके, उस सूत का गंडा गले में बाँधने से, झाडा देने तथा यंत्र पास मे रखने से एकातरा ज्वर, तिजारी, ताप आदि रोग दूर होते हैं। गुग्गुल मिश्रित घी की धूप खेना चाहिये।

३४—कसूम के रंग में रंगे हुए सूत को ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार मत्रित करके तथा उसको गुग्गुल का धूप देकर बाधने से और यंत्र पास में रखने से गर्भ असमय में नही गिरता।

३५—ऋद्धि मन्त्र की आराधना करने, यन्त्र पास रखने से दुर्भिक्ष, चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि नष्ट होते हैं। इस मंत्र की आराधना स्थानक (।) में करनी चाहिये और यत्र का पूजन करें।

३६—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से सम्पत्ति का लाभ होता है। विधान, १२००, जाप लाल पुष्प द्वारा करना चाहिए और यत्र का पूजन भी साथ करना चाहिये।

३७—ऋद्धि मन्त्र द्वारा २१ बार पानी मंत्र कर मुँह पर छीटने से और यंत्र पास रखने से, दुर्जन वश मे हो जाता है। उसकी जीभ का स्तम्भन होता है।

३८—ऋद्धि मंत्र जपने से और यंत्र पास रखने से धन का लाभ और हाथी वश में होता है।

३९—ऋद्धि मंत्र जपने और यंत्र पास रखने से सर्प और सिंह का डर नहीं रहता तथा भूला हुआ रास्ता मिल जाता है।

४०—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ बार पानी मंत्र कर घर के चारो ओर छींटने से और यंत्र पास रखने से अग्नि का भय मिटता है।

४१—ऋद्धि मन्त्र के जपने से और यंत्र के पास रखने से राजदरवार में सम्मान होता है और झाडा देने से सर्प का विष उतरता है। कांसे के कटोरे में जल १०८ वार मंत्र कर पानी पिलाने से विष उतर जाता है।

४२—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यंत्र के पास रखने से युद्ध का भय नही रहता।

४३—ऋद्धि मंत्र की आराधना और यंत्रपूजन से सब प्रकार का भय मिटता है। युद्ध में हथियार की चोट नही लगती तथा राजद्वारा धन-लाभ होता है।

४४—ऋद्धि मंत्र की आराधना और यंत्र के पास रखने से आपत्ति मिटती है। समुद्र में तूफान का भय नही होता। समुद्र पार कर लिया जाता है।

४५—ऋद्धि मंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसकी प्रतिदिन त्रिकाल पूजा करने से सर्व रोग नष्ट होते है और उपसर्ग दूर होता है।

४६—ऋद्धि मंत्र जपने और यन्त्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से कैद से छुटकारा होता हैं। राजा आदि का भय नही रहता हैं। ४५ दिन १०८ बार जाप करना चाहिए।

४७—ऋद्धि मत्र की १०८ वार आराधना कर शत्रु पर चढ़ाई करने वाले को विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है। शत्रु का नाश होता है, बैरी के

शस्त्रों की धार व्यर्थ हो जाती है, वन्दूक की गोली, वरछी आदि के घाव नहीं होते हैं।

४८—प्रतिदिन १०८ वार २१ दिन तक मंत्र जपने से और यन्त्र पास रखने से मनोवाछित कार्य की सिद्धि होती हैं, जिसको अपने आधीन करना हो उसका नाम चिंतन करने से वह व्यक्ति अपने वश होता है।

मन्त्र-साधना

अपनी कार्य-सिद्धि के लिये जैसे अन्य उपाय किये जाते हैं उसी प्रकार मन्त्र आराधना भी एक उपाय है। मंत्रो द्वारा देव देवी अपने वश में किये जाते हैं, उन वशीभूत देवों के द्वारा अनेक कठिन कार्य करा लिये जाते हैं तथा मंत्रों द्वारा मानसिक, वाचनिक और शारीरिक शक्ति मे वृद्धि की जा सकती है।

परन्तु इतनी बात निश्चित है कि जब मनुष्य के शुभकर्म का उदय होता है उसी दशा में यन्त्र, मंत्र, तंत्र सहायक या लाभदायक हो सकते हैं किन्तु, जब अशुभ कर्म का उदय होता है, उस समय यंत्र, मंत्र, तत्र काम नही आते। रावण ने अचल ध्यान से वहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी किन्तु लक्ष्मण के साथ युद्ध करते समय अशुभ कर्म के कारण वह विद्या रावण के काम नही आई इसलिये सदाचार, दान, व्रतपालन, परोपकार आदि शुभ कार्यों द्वारा शुभकर्म संचय करते रहना चाहिये। श्रेष्ठ वात तो यह है कि समस्त सासारिक कार्य छोड कर, रागद्वेष की वासना से दूर होकर कर्मबन्धन से छुटकारा पाने के लिये शुद्ध आत्मा का ध्यान किया जावे, परन्तु यदि मनुष्य उस अवस्था तक न पहुँच सके तो उसे अशुभ ध्यान, अशुभ विचार, अशुभ कार्य, छोडकर शुभ ध्यान, शुभ कार्य, शुभविचार करना चाहिये। जहाँ तक हो सके अन्य व्यक्ति को दुख, पीडा या हानि पहुँचाने के लिये मंत्र का प्रयोग नही करना चाहिये। स्व-परहित तथा लोक-कल्याण के लिये मन्त्र प्रयोग करना उचित है।

विधि

१—मंत्र साधन करने के लिये किसी मंत्रवादी विद्वान् से मन्त्रसाधन करने की समस्त विधि जान लेना आवश्यक है। विना ठीक विधि जाने मन्त्र-साधन करने से कभी-कभी बहुत हानि हो जाती है, मस्तिष्क खराब हो जाता है, मनुष्य पागल हो जाते हैं।

२—मंत्र-साधन करने के दिनों मे खान-पान शुद्ध वा सात्विक होना चाहिये, जहाँ तक हो सके एक वार शुद्ध सादा आहार करे।

इन दिनो में ब्रह्मचर्य से रहकर पृथ्वी पर सोना चाहिये।

३—शुद्ध धुले हुये वस्त्र पहिन कर शुद्ध एकान्त स्थान में बैठना चाहिये, आसन शुद्ध होना चाहिये। सामने लकडी के पटे पर दीपक जलता रहना चाहिये और अग्नि में धूप डालते रहना चाहिये। विशेप मंत्र-साधन विधि में कुछ फेर-फार होता है।

४—यंत्र को सामने चौकी पर रखना चाहिये।

५—यंत्र तांवे के पत्र पर उकेरा हुआ हो, अथवा भोजपत्र पर अनार की लेखनी से केसर द्वारा लिखा हुआ हो।

६—मंत्र का उच्चारण शुद्ध होना चाहिये।

७—मंत्र जपते समय मन को इधर-उधर नही भटकाना चाहिये।

८—शरीर मे एक आसन से वैठे रहने की क्षमता होनी चाहिये।

साधन-विधि

वशीकरण—मंत्र सिद्ध करने के लिये वस्त्र धोती, दुपट्टा, बनयान पीले रंग की होनी चाहिये, वैठने का आसन और जपने की माला भी पीली होनी चाहिए।

धनलाभ—के लिये मंत्र-साधन में सफेद वस्त्र, सफेद आसन और सफेद मोती की माला होनी चाहिए।

आकर्षण—मंत्र-साधन मे हरे वस्त्र, हरी माला और हरा आसन होना चाहिए।

मोहन मन्त्र में—लाल वस्त्र, लाल आसन और मूंगे की माला होना चाहिए।

जिस मंत्र—साधन के लिए कोई दिशा न वतलाई गई हो उसका साधन पूर्व दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए।

* ग्रन्थ समाप्तिः *

मुद्रक : महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१